गोदने का रंग

गोदने का रंग ✶ विश्वजीत ✶

साठ के दशक के आस पास लिखी यह कहानियाँ किसी वर्ग विशेष पर केन्द्रित नहीं हैं। इन कहानियों में जहाँ एक ओर गाँव की सोंधी महक में समाये जीवन - संघर्ष, स्वाभिमान और संतोष के साथ पनपता आदर्शवाद और जीवन से भावनात्मक लगाव महसूस होगा, वहीं दूसरी ओर शहरी भाग - दौड़ और धुएँ में घुटती हुई जिन्दगी और इस घुटन से उपजा असंतोष और तनाव भी मिलेगा। इन कहानियों में अपने अतीत से कुंठित, वर्तमान से निराश, भविष्य को तलाशता, और तमाम आशंकाओं के साथ जीता मध्यवर्ग का युवा भी है। सब के बावजूद अधिकतर चरित्रों में मुख्यरुप से जो एक महत्वपूर्ण विशेषता मिलेगी वह है—'जिजीविषा', क्योंकि लेखक ने चरित्रों पर कुछ भी थोपा नहीं है, और कोई दबाव न हो तो जीना कौन नहीं चाहता?

इन कहानियों में हमारे आस - पास के बिखरे यथार्थ हैं, बिखरी संवेदनाएँ है। जीवन में घुली यह संवेदनशील सच्चाइयाँ बिना किसी लाग - लपेट के जब शब्दों में उतर आती हैं तो कहानियाँ सहज ही कलात्मक बन जातीं हैं, जिनको पढ़ना कहीं न कहीं अपनी जिन्दगी को महसूस करना होता है।

— अश्वनी कुमार श्रीवास्तव
प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष
विदेशी हिन्दी शिक्षण
केन्द्रीय हिन्दी संस्थान
आगरा

गोदने का रंग

विश्वजीत

कुमार प्रकाशन
आगरा – 282005

प्रकाशक : कुमार प्रकाशन
8 / 153 जे / 2 न्यू लायर्स कालोनी
आगरा – 282005
मूल्य : 100.00 रुपए
$8.00
प्रथम संस्करण : जनवरी, 2002
आवरण : पी.कैप
लेज़र टाइपसैटिंग : पी.कैप
मुद्रक : तनिष्क पब्लिकेशंन

Godane Ka Rang (Short Stories) by Vishwajeet

कथा - क्रम

श्रद्धेय प्रो० रमानाथ सहाय को सादर

नया पाठ

झपसी ठेकइत ने जब लखनउआ ठेका लगाकर तबले पर थाप दिया तो हरमुनिया की मद्धिम सुरीली आवाज ढँक गयी । जोड़ी और सारंगी गनगना के चुक गयी । गाँव के सिवान के बाहर से तबले की आवाज टकटोरते हुए आने वाले तमाशगीरों ने अपनी चाल तेज कर दी । राय साहब का दुआर भरने लगा । औरतों की लैन अलग, मर्दों की अलग। नरायन चौकीदार हाथ में भाला लिये, गले से लेकर कमर तक फटहा गवरमिन्टी लाल साफा लपेटे खड़े लोगों को बैठाता । जो नहीं बैठता उनको डाँट-डपट कर किसी तरह सीधा करता और फिर औरतों की लैन से कुछ परे हटकर महँगुआ की पान की दूकान पर बैठ जाता । मुफ्त की बीड़ी लेकर धुकधुकाता और ताकता रहता, कभी नाच की ओर कभी भीड़ की ओर ।

गनेस जोड़ी बजाते हुए कभी तो सिर नीचे झुका लेता और लगता कि जैसे दोनों हाथों की जोड़ी जुट कर एक हो गई है और उसकी आँखों में धँसती जा रही है और जब सामने की ओर सिर उठाता तो लगता कि वह जोड़ी नहीं बजा रहा है, वह तो सामने राय साहब के ओसारे की छत निहार रहा है और जोड़ी है कि अपने आप उसके मशीनी हाथों में पड़ी बजती जा रही है । झपसी को अपने तबला-डुग्गी के अलावा कुछ भी नहीं सूझता है । उसका सिर तना हुआ है । कभी-कभी वह भी अपना सिर झटक कर एक बगल हरमुनिया मास्टर सरूप और दूसरी बगल सारंगी मास्टर सोमारी की ओर देखता और फिर उसकी आँखे गड़ जातीं मुनिया के पैर में बँधे घुँघरू के 'छुमक-छुमक' बोल पर, गीत की पूर्वी धुन पर और ताल के दुगुन-तिगुन के साथ ही उसका सिर भी झूम उठता । उसके सिर के छोटे-छोटे बालों के बीच चिरूकी खडी हो जाती और उसी ताल पर नाच उठती-धि-धि-धिना धि-ध-ना ·

राय साहब के डेढ़ बीघे के दुआर पर भला चार पालों से क्या होता । एक अच्छा वाला पाल तो नचनियों ने छेंक रखा था । एक ओसारे के सामने उत्तर-दक्खिन जनाना लोगों के लिए बिछा दिया गया था। बाकी दो पालें एक लैन में पूरब-पश्चिम करके दक्खिन ओर तमाशगीरों के लिए बिछा दी गई थी। पूरब की ओर अभी काफी खुशफैल जगह बची थी । कुछ लोग-बाग तो खड़े-खड़े थक कर वहीं चुक्का-मुक्का बैठ गये हैं, फिर भी बहुत लोग खड़े हैं । नरायन चौकीदार बार-बार उन लोगों को

बैठाता किन्तु उसके वहाँ से हटते ही लोग कुत्ते की पूँछ की तरह फिर जस के तस खड़े हो जाते । आजिज आकर नरायन ने जब यही बात राय साहब से कही तो रायसाहब ने उसे ही खलील मियाँ और रामलगन मिस्त्री के घर पाल लाने भेज दिया। जब तक पालें बिछती रहीं नाच ठप्प हो गया । झपसी ने तबला-डुग्गी आगे सरका दिया और गमछा से मुँह पोंछने लगा । मुनिया अपने घुँघरू बँधे पैर पसार कर नीचे अखाडे में बैठ गया । सरूप हरमुनिया की भाथी वैसे ही खुली छोड़कर बीड़ी पीने लगा । सोमारी ने सारंगी को अपनी गोद में बच्चे की तरह लिटा लिया और सुरती मलने लगा । गनेस वहाँ से उठकर राय साहब के बँगले में चला गया। बाकी समाजी वहीं एक किनारे बैठे थे । ढिबरी की रोशनी में वे अपने चेहरों पर गोखरी मलते, कपड़े बदलते और जब जिसकी बारी होती वहाँ से उठ पड़ता। अभी सब लोग ठीक से बैठ भी नहीं पाये थे कि हल्ला होने लगा—

"अब शुरू होना चाहिए ।"

"सुस्ताने से काम नहीं होगा ।"

"गरमी बनी रहे ।"

"टटका का मजा और है बसिया का और ।"

"अब ठण्डा हो रहा है ।"

ना-धि-ना-धि-न-क-धिन

झपसी ने तबले पर हाथ फेरा । मुनिआ बीड़ी का एक दम जोर से खींच कर खड़ा हो गया । मुँह ऊपर की ओर करके उसने धुआँ उगला और जलती बीड़ी पैर के नीचे कुचल कर बुझा दिया । घुँघरू छमक उठे । हल्ला बन्द हो गया । राय साहब के बँगले में सीटी बजी । सरूप हरूमुनिया छोड़ कर खडा हो गया । झपसी ने तबले पर से हाथ हटा लिया। मुनिआ एक किनारे वहीं बैठ गया । सोमारी ने सारंगी को लावारिस बच्चे की तरह वहीं छोड़ दिया और भीड़ से बाहर थूकने चला गया । गनेस बँगले के दरवाजे पर खड़ा पूरब की ओर टुकुर-टुकुर ताकता रहा । सरूप ने बारी-बारी चारों दिशाओं की ओर हाथ जोड़ा । धरती माता (पाल) को दायें हाथ से छूकर उसी हाथ को अपने माथे से लगाया-भाइयों : आज आप लोगों के सामने हम अनूप सौदागर और बानूपरी का नाटक खेलता है । कथा है कि अनूप नगर में एक सौदागर रहता था । उस सौदागर का एक ही बेटा था जिसका नाम

भीड़ को लाँघता हुआ पूरन, चेहरे पर गोखरी पोते हुए सरूप के आगे खड़ा हो गया । दशरथ की मँगनी की हाफ कमीज उसके बदन में इतनी ढीली पड़ रही थी कि साफ पहचान में आ जाता था । मंगली की बिहौती कामदार टोपी भी उसके सिर पर ठीक नहीं बैठ रही थी । सोशलिस्ट पार्टी के नेता दूबे जी का झोला कांखासूती किये था । झोला बिलकुल खाली था । उसकी लम्बी लाल पट्टी उसके सीने पर कस गयी थी और थैला उसकी कमर से नीचे तक जंघे से सटकर झूल गया था । धोती वही थी जिसे वह रोज पहनता था, किन्तु पहिनने का ढंग वह नहीं

था । इसलिए एड़ी तक गिरे चूनट के बीच धोती की गंदगी और तमाम फटे छेद छिप गये थे ।

पूरन भी कुछ देर तक अखाड़े का चक्कर लगाता रहा फिर सरूप की ओर मुँह करके खड़ा हो गया ।

पूरन-"पिता जी !"

सरूप-"हाँ बेटा ! सरूप ने कंधे पर रखा गमछा हाथ में ले लिया ।"

पूरन-"पिताजी ! हम नौकरी करने जाएगी ।"

सरूप-"क्या कहा ?" सरूप घूमकर पूरन की ओर हो गया । हाथ का गमछा उसके कंधे पर डाल लिया । वह पूरन की ओर ऐसे देखने लगा जैसे पूरन की बात से वह चिहुँक गया है ।

पूरन-"हम कहती है पिताजी कि हम नौकरी करने जाएगी ।"

सरूप इसके बाद भूल गया कि उसे क्या कहना चाहिए । वह मदारियों की तरह चक्कर काटता दोनों हाथ मलता गनेस के आगे पीठ करके खड़ा हो गया। गनेस ने फुसफुसा कर कुछ कहा तो सरूप को बात याद आ गयी । उसने पूरन की ओर मुड़ते हुए कहा, "देखो बेटा ! हम लोग जाति का सौदागर हैं । हम लोगनि का खानदानी पेशा व्यापार करना है । तुम भी व्यापार में अपना मन-चित लगाओ ।"

हौऽ(बन्द करो) हौऽ करो हौऽ

कलेसर ने अपने चेहरे पर कालिख पोत ली थी । उस पर चूने का बुन्ना लगता था कि काले रंग के कपड़े पर कुछ सफेद गोले अनरंगे छूट गये थे । उसका पैन्ट घुटने से थोड़ी नीचे टाँगों से बिलकुल चिपक गया था जैसे किसी आठ साल के लड़के का पैन्ट या अलीगढ़ी पायजामा हो । उसका कोट बिलकुल झिबरी हो गया था । कोट के दोनों पाकेट फट कर नीचे की ओर झूल गये थे । कोट के नीचे उसने ढेर-सा कपड़ा अपने पेट पर बाँध लिया था जिससे नीचे की ओर कोट उसकी तोंद पर खिंच गया था । ऊपर वैसे ही खुला था । उसके सीने के बाल साफ दिखाई देते थे । उसके बायें हाथ में एक छोटा-सा पीतल का लोटा था, जिसे वह घुमाता रहता था । चलता भी था तो भचक-भचक कर । लोग उसे देखते ही हँसने लगे । राय साहब की चार साल की पोती सुधा जिसे वह दुलार से सुधिया कहते हैं, राय साहब की गोद में सट गई ।

सरूप ने कलेसर की पीठ पर एक धाप जमायी, "तुमने कहाँ से आता है? तुम कौन होता है ?" पूरन एक किनारे खड़ा हो गया ।

कलेसर गिरते-गिरते संभल गया । वह जोर-जोर से साँस लेता हुआ बैठ गया, फिर तुरंत खड़ा हो गया ।

सरूप ने फिर पूछा, "नहीं बताएगा ?" और एक धाप फिर पीठ पर जमा दी ।

"बताता हूँ । बताता हूँ ।" कलेसर ने हकलाते हुए कहा । वह सरूप के

सामने तनकर खडा हो गया । कलेसर रुक-रुक कर एक-एक अक्षर बोलने लगा-"ब-च-वा ! पं-डि-त इ-न-र म-नि का ना-म ना-हीं सु-ना है ?"

"अरे पंडी जी ! पालागी । पालागी पंडी जी ।" सरूप ने एक हाथ से अपने माथे पर ठोकते हुए कहा ।

कलेसर ने एक आँख दाब कर भीड़ की ओर देखा और दोनों होठ खींच कर एक किनारे कर लिया । "आज मरन हो यजमान । आजु ।"

सरूप चमक कर कलेसर के और नजदीक आ गया, "ई कइसा आशीर्वाद पंडी जी ।"

कलेसर लोटा जमीन पर रख कर बैठ गया ।

कलेसर-"बचवा ! इस आशीरवाद का अरथ है कि तुम्हारा आयुरबल बढ़े। तुम युगयुग जीयो बचवा ।"

सरूप-"हूँ । पंडी जी इसका अरथ तो बहुत बढिया है ।"

कलेसर ने फिर एक आँख दाब ली; "हाँ बचवा ।"

सरूप ने कलेसर के पैन्ट की ओर ऊँगली दिखाते हुए पूछा, "अच्छा पंडी जी आपने ई का पहनता है ?"

सरूप ने कलेसर के पैन्ट को घुटनों से खींचा, "ई सिधवाई है बचवा । इसे बडमनई लोग पहनती हैं ।"

सरूप-"हाँ । अच्छा पंडी जी ! आपने मुँह पर कालिख काहे पोता है ?"

कलेसर-"नाही जानते हो बचवा ! कहाउत है कि करिआ बाभन गोर चमार, इनसे दई न पावें पार, इसीलिए ।"

सरूप-"अच्छा पंडी जी । यह सब तो हुआ । आप बहुत ठीक टैम से आये हैं । हमारा बेटा नौकरी करने जाता है । हम यह कहता है पंडी जी कि अपनी जाति का स्वभाव नहीं छोड़ना चाहिए । हम सौदागर-बेटा है । हमको अपने जाति का पेशा शोभा देता है । है न सही बात ?"

कलेसर ने कई बार अपनी गर्दन हिलायी, "सच है यजमान, सच है, हरीओम तस-तस" कलेसर ने अपनी एक आँख दाब कर मुँह बनाया । भीड़ हँसने लगी ।

कलेसर-"तुम्हारा बेटा कहाँ है ? उसे मेरे सामने बुलाओ तो ।"

सरूप ने पुकार लगायी-"ओ अनूप । अनू प।"

पूरन उससे सट कर खडा था, तुरन्त पास आ गया, "क्या बात है पिता जी ?"

सरूप-"देखो पंडी जी आये हैं । इनका गोड़ पकड़ो ।"

पूरन ने कलेसर का पैर पकड़ा और चिकोटी काट दी । कलेसर ने पैर झिटका और सिसकारी भरते हुए आशीर्वाद दिया-"आजु मरन हो बेटा, आजु "

कलेसर-"अच्छा बेटा ! तुम व्योपार नहीं करेगा तो क्या करेगा ?"

पूरन ने अपनी टोपी ठीक की और कलेसर के कुछ और पास हो गया,

''पंडी जी हम सरकारी नौकरी करेगी ।''

कलेसर—''ठीक बात । तुम नौकरी करेगी तो घूस लेगी ?''

पूरन—''नही ।''

कलेसर ने एक ऑख दाबते हुए फिर पूछा—''घूस देगी ?''

पूरन—''नही देगी ।''

कलेसर उठ कर खडा हो गया—''चापलूसी करेगी ?''

पूरन—''नहीं करेगी ।''

कलेसर—''तब तुम नौकरी भी नहीं करेगी । तुम व्योपार करेगी । तुम्हारा बाप व्योपारी तुम व्योपारी । क्या समझती है ?''

कलेसर गीत गाने लगा—''आँय आँय जंगल का सुनो बयान रे चिड़ियों की कचहरी. ''

कलेसर कई बार इसी एक लाइन को दुहराता रहा । कलेसर की आवाज बहुत मोटी और भद्दी थी । लय भी उसकी पकड में नहीं आती । पूरन गाने लगा और कलेसर केवल नाचता और मुँह बनाता रहा। हँसते-हँसते लोगों के पेट फूल गये ।

बिना पढले कउआ भइलें कलट्टर
गेहूँ के लिखे धान रे चिड़ियों की कचहरी
बिना पढले सरहज भइलीं सभापति
गाँव-गाँव चलेली उतान रे चिडियों की कचहरी

और जब गीत समाप्त हो गया तो फिर पूरन कलेसर के सामने आया, ''अच्छा पंडी जी अब हम व्योपार करने जाएगी । हमारे यात्रा का साइतशुभ विचार दीजिए।''

कलेसर बैठ गया। उसने अपने कपडे की तोंद में से एक कागज का पन्ना निकाला । उस पन्ने को वह इधर-उधर थोडी देर पलटता रहा । कई बार उलट चुकने के बाद वह बहुत प्रसन्न हो कर कहने लगा—

''आज पच्छिम दिशा छोड़ कर तीन दिशा के लिए जतरा ठीक है ।''

पूरन—''तो हम पच्छिम दिशा नहीं जा सकती है ?''

कलेसर—''जा सकती है मगर मर जाएगी ।''

पूरन—''अच्छा पंडी जी अब हम जाती है ।''

पूरन जब वहॉ से हटने लगा तो कलेसर ने लपक कर उसकी बाँह पकड़ ली, ''हमारा दछिना लाओ । हम वैसे नहीं जाने देगा । साइत बिगाड़ देगा ।''

पूरन ने झिटक कर हाथ छुड़ा लिया, ''दछिना कैसा ? हटो-हटो ।''

कलेसर तोंद ऊपर की ओर करके लेट गया, ''हम अनसन करेगी । हम तुम्हारे दुआर पर अपना जान देगी । हमको ममुलिया समझता है । हम गाँधी जी का चेला है । हम लोटा के पानी में डूब कर मर जाएगी ।''

पूरन ने कलेसर को उठाया और अखाड़े से धक्का दे कर बाहर कर दिया।

ना-धी-ना-धी-धा-धा

छुमक-छुम-छुमक-छुमक-छुम

पेट्रोमेक्स में हवा कम पड़ गयी थी। उसकी रोशनी मद्धिम होने लगी। सन्तुआ ने झट नीम की गाछ से रस्सी के सहारे लटकते गैस को नीचे उतारा और हवा भरने लगा । राय साहब के बेटे रजिन्दर बाबू ने वही ओसारे मे बैठे-वैठे सन्तुआ को होशियार किया-"जरा सँभाल के ! सूई की ओर भी नजर रहे ।"

धी-धी-ना-धी-धी-ना

छुमक-छुम-छुमक-छुम

बलम तेरी गोदी

अभी मुनिया कमर लचकाता नाच ही रहा था कि गनेस हाथ में जोड़ी लिए, उठ खड़ा हुआ । जब तक गीत चलता रहा गनेस भी मुनिया के पीछे-पीछे जोडी बजाता घूमता रहा । जब मुनिआ घुमरी मारना बन्द करके एक ही जगह खड़ा हो कर धीरे-धीरे तबले की ताल पर एक ओर कमर लचकाता हुआ बैठता और फिर वैसे ही कमर झोरता हुआ खड़ा होता तो लोग-बाग के दिल बेकाबू हो जाते मगर राय साहब के दुआर का लिहाज करके लोग चुप रह जाते । यही नाच किसी दूसरे के दुआर होता तो हाय राजा छूरी मत चलाओ का राजा मर जाएँ ? और ऐसी ही बहुत-सी आवाजों के आगे और सारी आवाजें दब जातीं । मुनिआ कई बार उसी तरह कमर डुलाता उठता-बैठता रहा । कभी-कभी वह अपने दोनों बाँहों को पीछे की ओर जमीन पर फेंक कर बेंती झुक जाता । उसकी दोनों टांगे छितरा जातीं । ब्लाउज के पीछे रूमाल की छोटी-बडी छाती आसमान देखती और चवन्नी से ले कर अठन्नी तक लोग-बाग की मुट्ठियों में कसमसा के रह जाती।

जब गीत की आखिरी लैन भी समाप्त हो गयी तो मुनिआ ने आँचल सँभाल कर पीछे पीठ की ओर फेंक दिया । आँचल फेंकते हुए दोनो गोल रूमाल नीचे ढरक जा रहे थे जिसे जुगुत से मुनिआ ने ठीक किया। उसने आँचल सरका कर दोनों गोलों के बीच कर लिया ठीक नरायन चौकीदार के गवरमिन्टी साफे की तरह, पूरन के सोशलिस्टी झोले की तरह।

"पिताजी !" मुनिआ ने दायें हाथ से एक कान के कनफूल की कील दबाते हुए कहा ।

"क्या है बेटी !" गनेस ने अपने दोनों हाथ एक-दूसरे से सटा कर ऐसे बना लिया था जैसे गांजा का दम लगाने जा रहा हो।

"हमने यह कहती है पिताजी की हम शैर करने जाएगी ।" मुनिआ ने वायें-दाये देख कर कहा ।

"सैर को जाएगी ? तुमने नही जा सकती ।" गनेस चक्कर मार कर मुनिआ के सामने आ गया।

"हम क्यों नहीं जाएगी । हम जरूर जाएगी ।" मुनिआ ने गनेस के मुँह के पास मुँह ले जाकर कहा ।

गनेस ने कुछ नरम आवाज में घूमते हुए कहा, "देखो बेटी, तुमने अब जवान हो गयी हो । तुम खूबसूरत हो । तुम्हारी शादी की फिकर है । तुम अकेली नही जाएगी ।"

मुनिआ ने हाथ जोडते हुए कहा, "पिताजी ! हाथ जोडती हूँ । बिनती करती हूँ । मुझे जाने दीजिए । कुछ भी ऐसा-वैसा नही होगा । मै मूरख नहीं हूँ। मैंने बी.ए. पास किया है इसलिए अब घर में तबियत नहीं लगती ।"

"नही-नहीं ! तुम नहीं जा सकती है ।" गनेस एक पैर जोर से पटकते हुए एक ओर मुड़ गया ।

मुनिआ भी चमक कर किनारे हो गया । उसने साडी का पल्ला ठीक किया । माथे की टिकुली सरक कर किनारे हो गयी थी, जिसे उसने बीच में जमा लिया—"हमको किसी की परवाह नहीं है । हमने बी.ए. पास किया है । हम घर में नहीं रह सकती ।" और मुनिआ वहाँ से चलने लगा ।

गनेस उसको पुकारता रहा, "बानूपरी, ओ बानूपरी । रुक जाओ बेटी, कहॉ जाती हो ?"

मुनिआ रुका नहीं, चला गया । पूरन गीत गाने लगा—

आँय आँय
ई कइसन आयल जमाना विधाता
धी-धिनक-धिन-धी

गनेस इस नाच मे एक तरह उस्ताद मान लिया गया है । तबलची के नही रहने पर या थक जाने पर काम-चलाऊ तबला बजा लेता है । लाबड-बित्ता हरमुनिया भी सीखे हुए है । कभी-कभार साड़ी लगा कर नाच भी लेता है । ताल-सुर की माहिर है । केवल सारगी नहीं बजा पाता और सही मायने में उसने सारंगी सीखने की कभी कोशिश भी नहीं की । सोमारी के नहीं रहने पर कुछ खटकता तो जरूर है मगर हरमुनिया से ही काम चल जाता है । गनेस को अपना पाठ तो बर्राक याद ही है, और समाजी भी अपना पाठ भूल जाते हैं तो गनेस बता देता है । हमेशा बगल में किताब रखे रहता है । हरवाही, कुदरवाही, कहीं भी कुछ फुरसत मिली की किताब खोल कर अक्षर मिला-मिला कर पढने लगता है । चार मील के इर्द-गिर्द किसी भी गॉव में नाच होने वाला हो तो चींटी की तरह सूँघ कर पता लगा लेता है । कोई साथ चलने वाला न मिले तो रात-बिरात अकेला चला जाता है और भिनसार होते-होते लौट आता है । गनेस को बहुत साध है कि वह कभी गोरखपुर या देवरिया जा कर सिलेमा देखे । रजिन्दर बाबू कहते है कि अगर वह जाति का चमार नही होता तो अपने साथ ही शहर में रख लेते मगर किस्मत का फेर है कि वह चमार है । गनेस ने ही मुनिआ को भी फोड कर अपने नाच मे मिलाया । पहले मुनिआ रत्ती मिआँ के नाच में था । रत्ती मिऑ का चालीस रूपये मुनिआ पर कर्ज था । बहुत सिफारिश पैरवी के बाद किसी तरह मुनिआ राजी हुआ। चालीस रुपये का पुरनोट कलेसर ने लिखा और पाँच पंच के सामने पुरनोट

पर मुनिआ का निशान पुर्जा हुआ ।

धी-धी-नक-धी-धी-नक

छमक-छुम-छमक-छुम

बिट्ठल का बेटा ठगवा नाच रहा था । ठगवा और मुनिआ मे जमीन-आसमान का बट्टा है । कहाँ राजा भोज, कहाँ भोजवा तेली । मुनिआ जब साडी लगा कर खडा होता है तो बिल्कुल नौजवान औरत की तरह लगता है । उसकी चाल-ढाल, उसकी आवाज सब कुछ औरतों की तरह । भगवान ने उसको गढा भी खूब है । बीस साल से ऊपर का हुआ मगर मूँछ-दाढ़ी के नाम पर एक रोआँ तक नहीं उगा। यह कोई सैंस की बात नही है फिर भी लगता जैसे भगवान उसे औरत बना रहा था कि उसका दिमाग कुछ बदल गया । ठगवा के बाल बहुत छोटे-छोटे है । मुनिआ की तरह न तो वह जूड़ा बाँधता है न बालों में फूल ही खोसता है । साडी पहन कर भी एक लडका ही लगता है । आवाज भी उसकी मर्दो की तरह मोटी है ।

ठगवा का नाचना लोगों को अच्छा नहीं लग रहा था । कुछ देर तक तो लोग राय साहब के दुआर का लिहाज करके चुप रहे लेकिन कुछ देर बाद ही नीचे मुँह करके तेज-तेज सीटियाँ बजने लगीं । ठगवा को बिना गीत पूरा किये ही स्टेज से हट जाना पड़ा ।

एक ओर से मुनिआ और दूसरी ओर से पूरन अखाड़े में पहुँचे । कुछ देर तक दोनो एक दूसरे को जैसे बिना देखे अखाड़े में टहलते रहे । पूरन ने अपने कन्धे में एक छोटी गठरी लटका ली थी जिससे यह पता लगे कि वह व्यापार करने के लिए दूर यात्रा पर निकला है । मुनिआ ने इस बीच पहली वाली हरी साडी की जगह दूसरी पीली साड़ी पहन ली थी । साड़ी जगह-जगह से सिकुड़ी हुई थी । उसका लाल ब्लाउज वही पहले वाला था । वह साडी के पल्ले को इधर-उधर बार-बार सरकाता रहता, लगता जैसे वह साडी ठीक नहीं कर रहा है बल्कि इसी बहाने कुछ ढँक रहा है जो हर बार उघड़ जाता है । पूरन अपनी मूँछों पर हाथ फेरता अकड़-अकड़ कर चल रहा था ।

मुनिआ-"आप कौन हैं ? कहाँ को जाना है ?" मुनिआ ने बीच अखाड़े में पूरन से पूछा । पूरन जैसे अब तक मुनिआ को देख ही नहीं रहा था । यह आवाज सुनी तो उसे अचम्भा हुआ । "हम ! हमने तो सिंहल दीप व्यापार करने जाती है । हम रूप सौदागर का बेटा अनूप होती है । मगर तुम कहाँ जाती है ? तुम कौन है ?"

मुनिआ ने मुस्करा कर ऊपर के दाँतों से निचला होठ दबा दिया और पूरन के और नजदीक सटते हुए कहा-"हम काबुल शहर के रशीद बादशाह की बेटी बानूपरी होती है । हमने शैर करने के लिए घर से निकली है ।"

पूरन ने लापरवाही दिखायी, "आछा ! मुझे टेशन का रास्ता वता सकती है ?"

मुनिआ फिर वैसे ही मुस्कराने लगा । वह अपनी पलकों को तेजी से बार-बार ऊपर-नीचे गिराता-उठाता रहा । "हम टेशन का रास्ता जानती है ।"

फिर कुछ देर रुक कर मुस्करा कर बोला—"मेरा सब देखा-सुना है । तुम मेरे पीछे-पीछे चले आओ ।"

पूरन खुश हो गया, "बहुत अच्छी बात है । हम इधर का रास्ता नहीं जानती हैं ।"

आगे-आगे मुनिआ और पीछे-पीछे पूरन कुछ देर तक अखाडे मे चक्कर लगाते रहे । दो डग चल कर मुनिआ ठमक जाता । पीछे मुडकर शराबी नजर से पूरन की ओर ताकता । जब मुनिआ रुकता तो पूरन भी ठमक जाता । मुनिआ को इस तरह ताकते देख कर वह पीछे मुँह फेर लेता और जब तीन चक्कर अखाडे का पूरा हो गया तो पूरन मुनिआ के पीछे से छटक कर आगे अखाड़े में आ गया, "यह तो जंगल है । तुमने हमको कहाँ ले चलती है ?" पूरन जैसे घबड़ा गया हो ।

मुनिआ भी बीच अखाड़े में पूरन के सामने आ गया, "प्यारे ! देखो तो कितनी शुनशान जगह है । तुम क्यों इस तरह घबड़ाता है ?"

मुनिआ ने जैसे पूरन को गाली दे दी हो । पूरन ने कन्धे से लटकी गठरी को पटक दिया ।

"तुम यह क्या अंट-संट बकती है । हम टेशन जाएगी । तुम नही जायेगी तो हम अकेले जायेगी ।"

मुनिआ उसी तरह मुस्कराता हुआ पूरन से सटने के लिए बढ़ने लगा । उसने अपनी दोनों बाँहे आगे की ओर बढ़ा ली थी जैसे पूरन को अपनी गोद में भर लेना चाहता है ।

मुनिआ—"हम अंट-शंट नही बकती है । हम सच कहती है शनम ! जबशे हमारी नजर तुम्हारे ऊपर पडी है, तुम से परेम हो गया है ।"

पूरन गर्दन झुका कर अपनी पीठ खुजलाते हुए बोला—"परेम हो गया है ?"

"हाँ शनम परेम हो गया है ।" मुनिआ अपनी दोनों बाँहें फैलाये हुए बाज की तरह झपटा, मगर पूरन था कि गौरा चिरई की तरह फुर से उड़ कर किनारे हो गया ।

पूरन—"यह परेम कौन चीज होती है ?" पूरन ने जब 'परेम' कहा तो कुछ इस तरह उसने मुँह बना लिया था जैसे थूकने जा रहा हो ।

मुनिआ—"तुम परेम नही समझता है ?"

मुनिआ ने झपट कर पूरन के गले में बाँहें डाल दी मगर पूरन ने एक हाथ से उसकी दोनो बाँहों को किनारे कर दिया। इसी हाथापाई में पूरन के सिर से टोपी गिर गयी । पूरन ने टोपी हाथ में उठा कर पहनते हुए कहा—"हम कुछ नहीं जानती है । हमको साफ-साफ बताओ कि परेम कौन चीज होती है ?"

मुनिआ ने हाथापाई बन्द कर दिया और अलाप भरने लगा आँऽऽ आँऽऽ

प्यार कर लो वर्ना फाँसी चढ जायेगा

पूरन किनारे खड़ा हो कर मुनिआ का नाच गाना देखता रहा ।

प्यार कर लो

छुमुक-छुमुक-छुम

रायसाहब अब तक जैसे ओसारे में वैठे-बैठे सो रहे हों कि अचानक मुनिआ और पूरन की इन हरकतों से वे झल्ला उठे । अकेले होते तो बात दूसरी थी । उसी ओसारे मे उनके छोटे बड़े तीन बेटे बैठे हुए थे । वही एक किनारे उनकी दोनों बहुएँ और दो जवान बेटियॉ बैठी हुई थी । उन सबके सामने मुनिआ और पूरन का इस तरह लाज-शरम घोल कर पी जाना रायसाहब को अच्छा नहीं लग रहा था । पहले तो उन्होंने सोचा कि कलेसर को बुला कर डॉंट दें कि इस तरह का कुछ भी फूहर-पातर उनके दुआर पर नही होना चाहिए । यह क्या मजाक है कि प्यार कर लो वर्ना ! गीत ही गाना है तो कोई भजन गाते जैसे 'है प्रेम जगत का सार और कोई सार नहीं है' या और भी बहुत से ऐसे भजन हैं । मगर उनकी बात चलती कहाँ है । चार बात वह कलेसर को सुनायेंगे तो रजिन्दर उन्हें सौ बात सुनाएगा-"नहीं देखा जाता तो जा कर सो रहिए । और भी तो देखने वाले हैं । आप ही की तरह सब लोग बुढ़ा नहीं गये हैं । हिन्दू के पुरनिया सठियाते हैं तो उनकी अकल भी सठिया जाती है । आप तो जानते है कि ब्रह्मानन्दी भजन और चक्रवर्ती हिसाब के बाद न तो कोई नई धुन निकली है न कोई नया गणित । फिल्मी धुन है फिल्मी ! जमाना बदल रहा है !" रायसाहब ने तो यही सब सोच-समझ कर कहा था कि नाच दरवाजे पर नहीं, पश्चिम वाले खलिहान पर होगा । वहॉ जगह भी काफी है । पकड़ी की छाँह है । सारा दोष इसी रजिन्दरा का है । कहता था कि घर की औरतें तो खलिहान पर नाच देखने जाएँगी नहीं । फिर नाच कराने से फायदा ! औरतों को खूब नाच दिखाओ । खूब फायदा हो रहा है । रायसाहब वहॉ से उठ गये । सुधिया को अपनी गोद में से उठा कर रजिन्दर की गोद में बिठा दिया। रायसाहब ओसारे से निकल कर जब बाहर आये तो लगा कि गीत की धुन कुछ खास बुरी नही है । वे कुछ देर तक घर के पिछवाडे खडे रहे । घारी में जा कर बैलों की पीठ सहलायी । इस बीच उनके टेंट से गीत की धुन सरक गयी थी। जब वह लौटकर ओसारे में वैठे तो कलेसर अखाडे मे आ चुका था । उसके सिर पर टीन का एक टूटा बक्सा था । जब भी मुनिआ पूरन की ओर झपटता कलेसर बीच में आकर खड़ा हो जाता । आखिर मुनिआ ने हार कर उससे पूछा-

"तुम कौन होता है ? तुम क्यों इस तरह बीच में आ कर अडता है ? क्यों ?"

कलेसर ने सिर पर का बक्सा पटक दिया । बक्से का ढकना छिटक कर एक ओर हो गया । लोग हँसने लगे । कलेसर मुँह वनाता हुआ मुनिआ की ओर घूरता रहा, "हमने अपने मालिक का नौकर होता है । हमने अपने मालिक को बचाता है । मगर तुम कौन जानवर होती है ?"

मुनिआ कलेसर का मुँह बनाना देख कर मुस्करा पडा । उसने हँसी

छिपाने के लिए मुँह में आँचल का एक छोर दाब लिया–"हम को तुम्हारे मालिक शे परेम हो गया है ।"

"परेम ! परेम ! परेम ?" कलेसर ने जितनी बार 'परेम' कहा वह अपनी एड़ी के बल घूम जाता । दाँत निपोरता, होंठ बिचकाता ओर इस तरह मुँह चलाता जैसे 'प्रेम' नही कह रहा रशोगुल्ला चाभ रहा है ।

"परेम कौन चीज होती है ?" कलेसर ने मुनिआ की ओर सटते हुए पूछा।

"तुमने भी परेम नाही जानता है ?" मुनिआ ने परे हटते हुए कलेसर से पूछा ।

"ना ! हमको जरिको सा नहीं मालूम ।" कलेसर मुनिआ की ओर जीभ चटकारते हुए बढ़ने लगा । कलेसर का मुँह बनाना और लार चुआना देख कर सब हँसने लगे । पूरन भी एक ओर मुँह ढँक कर हँसने लगा।

मुनिआ–"जब तुमको परेम नहीं मालूम तो हमारी तरफ क्यों सटा आता है ?" मुनिआ ने वैसे ही परे हटते हुए कहा ।

"नाहीं, नाहीं ! हम जानती है । परेम इतना मोटा होता है (कलेसर ने अपनी दोनों बाँहें आगे की ओर बढ़ा कर एक गोला बना लिया) । इतना लम्बा होता है (उसने अपनी एक बाँह खड़ी कर दी) इतनी बड़ी–बड़ी आँखें होती हैं (उसने दाँयें हाथ को कटोरा जैसा बना लिया)।"

मुनिआ ने कलेसर को धकेल दिया । कुछ तो धक्के की वजह से और बहुत कुछ अपने दर्शकों को हँसाने के लिए वह उतान भहरा पड़ा और जोर–जोर से चीखने लगा–"हाय बाप ! माई रे माई ! बचाओ लोगों ! औरत जाति हम मरद मानुष का जान मार रही है ।"

लोग–बाग का हँसते–हँसते पेट फूलने लगा !

कलेसर जब अखाड़े से बाहर जाने लगा तो भी बड़बड़ाता रहा, "हे पंच लोगो इतनी खूबसूरत कोटा की ताजी साड़ी और मालिक कहता है नहीं पहनेगी । मालिक हिजड़ा गया है ।" पूरन उसके पास पहुँचता तब तक वह अखाड़े से बाहर हो गया था ।

कलेसर नकली मार खाते–खाते नकली थेथर हो गया है । बिना थेथरई के यह काम होता भी तो नहीं । जिला–जवार में लोग इस नाच को कलेसर के ही नाम से जानते हैं । जब यह नाच पखावज का था, तो भी कलेसर ही सर्वेसर्वा था, नाच का सट्टा–पुर्जा उसी के निशान से पक्का होता था । जिस गाँव में वह नाचने जाता, लोगों की भीड़ लग जाती, और यदि किसी वजह से कलेसर नहीं जा पाता तो समाजी लोगों की वह दुर्गति होती कि एक रात भी चैन से नाचना मुश्किल हो जाता । कई बार तो जवार के अच्छे–अच्छे तबला–सारंगी के नाच वालों ने उसे फोड़ कर अपने नाच मे मिलाना चाहा । गरीब मलाह तो हाथ धोकर उसके पीछे पड़ गया था । कलेसर को कई तरह से समझाता रहा कि देख पखावज के नाच

से तुमको मिलता भी कितना है । घाम-शीत में नंगे पाँव दौडना पड़ता है । कभी टैम से खाने को नहीं मिलता है । और छोटे लोगो के घर खाने को भी क्या मिलेगा? तबला-सारगी की बात ही गैर है । रुपये-पैसे तो मिलते ही हैं, बडे लोगों के घर खाने-पीने का भी सुख रहता है । पूडी मिठाई मिलती है और इनाम अलग से । मगर कलेसर अपने गाँव का नाच छोड़ने को किसी भी शर्त पर नहीं राजी हुआ । कहता था कि 'थोड़ा खाना मगर अपने गॉव रहना ।' अपना ही नाच बदल कर तबला-सारंगी का कर लेंगे, अपने गाँव की बात और है ।

कलेसर जो चाहता था कुछ तो पूरा हो ही गया । बाकी भी पूरा हो जाएगा । साज-बाज खरीदने में ही दो सौ का कर्ज हो गया । धीरे-धीरे वह भी इस नाच में नौटंकी की तरह नगाड़ा रख लेगा । पर्दे खरीद लेगा । रूप बदलने के लिए तरह-तरह के कपड़े हो जाएँगे फिर इस जवार में इस जोड़ का कोई दूसरा नाच नही रहेगा । वह डेरेदार हो जाएगा तो उसको दो हिस्से मिलेंगे—एक तो डेरेदार (रुपया लगाने वाला) की हैसियत से और दूसरे नाचने के लिए । ब्याज की रकम जो उसे हर साल देनी पडेगी वह अधिक होगी या डेरेदार का हिस्सा कलेसर नहीं सोचता । आखिर नाम भी तो कुछ होता है ।

"तो तुम हमशे परेम नहीं करेगा ?" मुनिआ पूरन की ओर सटने के लिए न तो पहले की तरह आगे बढ़ा और न मुस्कराया । लगा कि जैसे वह पूरन पर नाराज हो गया है ।

"नाही करेगी । नहीं करेगी ।" पूरन ने दायें हाथ की तर्जनी को तीन बार आगे की ओर बढ़ा कर, ऊपर से नीचे गिराते हुए कहा ।

"अच्छा !" मुनिआ ने एक ओर मुँह करके ताली बजायी ।

उसकी ताली की आवाज समाप्त हुई और कलेसर अखाड़े में आ गया । इस बार उसने अपने पूरे शरीर पर कालिख पोत ली थी । काले रंग में रंगी उसने सन की लम्बी दाढी बाँध ली थी । उसने शरीर से सारे वस्त्र उतार दिये थे, केवल एक काली लगोट पहिने हुए था । जब वह अपना सफेद दाँत बाहर की ओर निकालता तो उसका चेहरा और भी भयानक हो जाता। बहुत से लोगों ने पहचाना ही नहीं कि यह कलेसर है । रायसाहब की गोद में बैठी सुधिया डर के मारे उनकी छाती से चिपक गयी ।

"देखो जल्लाद, यह नौजवान हमशे छेडखानी करता है ।" मुनिआ ने पूरन की ओर तर्जनी दिखाते हुए कहा ।

"हूँऽऽ" कलेसर पहलवान की तरह मेल्हता हुआ पूरन के पास गया और उसकी दॉयी कलाई पकड़ ली—"तुमने छेड़खानी करता है ? खाबसूरत लड़की देख कर ऑख लड़ाता है ?"

पूरन गिड़गिडाने लगा—"यह लड़की झूठ बोलती है । हमको रास्ता बताने के लिए यह खुद हमको यहाँ ले आयी है । हम कुछ नहीं जानती हैं । हमने कोई छेडखानी नहीं करती है । कुछ ।"

''तुमने चुप नही रहेगी ? जल्लाद ! इसे यहाँ से ले जाओ ।'' मुनिआ ने फ़ड़क कर कहा ।

पूरन फिर गिडगिड़ाने लगा । किन्तु कलेसर ने जैसे कुछ भी नहीं सुना। कलेसर ने पूरन की दोनों बाहो को पीछे की ओर खींचकर वाँध दिया। पूरन को उसने जबरदस्ती मुँह के बल गिरा दिया । पूरन किसी तरह करवट बदल कर उतान हो गया। उसने पीठ के बल घिसनी काटते हुए गाना शुरू किया-

तुम पति राखो गिरधारी

कलेसर ने पूरन की टोपी पहले उतार ली थी और अब उसके एक-एक कपड़े उतारता रहा और बोलता रहा, ''तुम हमको ममूलिया समझता है ? हम कलेसर चमार नहीं है । पुलिस का सरकारी आदमी है । जब तक तुम्हारे पास कुछ भी माल-मुत्ता रहेगा हम तुमको नहीं मार सकता ।'' लोग-बाग हँसने लगे । नरायन दाँत पीस के रह गया ।

कलेसर ने पूरन की कमर में एक लँगोट छोड़ कर शरीर के सारे कपड़े उतार लिए और एक किनारे गँड़ासा पथरने लगा । पूरन गाता जा रहा था–

तुम पति राखो

कलेसर गँड़ासा पथरते हुए भी बड़बड़ाता जा रहा था, ''साला परेम नहीं करेगी । बीच सड़क पर डॉका डालेगी । चार आने का माल आठ आने में बेचेगी। हम इसको छोड़ नहीं सकती । इसे तसले में बाफेगी । इसकी बुटिया-बुटिया काट कर कुत्ते को खिलाएगी । ही ही ''

तुम पति राखो गिरधारी

ना-धी-धी-ना

बैठकी पूरी तरह जम गई थी । कुआर की रात गहराती जा रही थी । चाँद आसमान के बीचो-बीच चढ़ आया था । चटक चाँदनी मे पेट्रोमेक्स की रोशनी भी मद्धिम लगती थी । सन्तुआ पेट्रोमेक्स के नजदीक बैठा रहा । थोड़ी भी रोशनी कम होती तो वह उठ कर पेट्रोमेक्स में हवा भरता और फिर अपनी जगह बैठ जाता। हवा में एक नमी भर गई थी । छोटे-छोटे बच्चे वहीं पाल पर जगह बनाकर सो गये थे । औरतों की लैन भी पतरा गयी थी । बाल-बच्चे वाली औरतें तो कभी वहाँ से उठकर चली गयी थीं । फिर भी बहुत लोग थे जिनकी आँखों में नींद जाग रही थी । दुआर भरा लगता था । रायसाहब की गोद में बैठी सुधिया टुकुर-टुकुर ताक रही थी । हल्ला कम हो गया था।

पूरन का गीत जब समाप्त हुआ तो बहुत से लोग खिसकने लगे । कलेसर हाथ में गँड़ासा लिए पूरन के सामने खड़ा हो गया–''अब तुमको हम मार डालेगी । बोलो कुछ कहना है ?''

नरायन चौकीदार ने रायसाहब से घर जाने की छुट्टी मॉगी तो रायसाहब ने रोक दिया–''बैठो अब तो नाच भी खत्म हो रहा है । कौन रोज-रोज नाच होता है ।''

नरायन वहीं राय साहब की चारपाई के पास जमीन पर बैठ गया और

अपनी बेबसी जताने लगा कि सबेरा होते ही उसे जग जाना है । डीह पर के खेत में कटिआ करनी है । रात भर जगने के बाद दिन भर शरीर टूटता रहता है । कोई काम ठीक से नहीं हो पाता, और अभी तो नाच भी देर तक होगा । अनूप सौदागर को बानूपरी जल्लाद के हाथ से छुड़ाएगी । दोनों में प्रेम हो जाएगा और वह न जाने कितनी बातें कहता है कि बीच ही में गोद में बैठी सुधिया बोल पड़ी–

"बाबा !"

"क्या है बेटा !" सुधिया को पुचकारते हुए रायसाहब ने उसके दोनों गालों को सहला दिया ।

"बाबा ! यह परेम क्या होता है ?"

"चुप रह !" रायसाहब की आवाज बदल गयी । सुधिया को उन्होंने अपनी गोद से उतार कर जमीन पर खड़ा कर दिया । वह रोती हुई घर में चली गयी । रायसाहब ने नरायन को छुट्टी दे दी । अपनी चारपाई पर मुँह ढँक कर लेट गये ।

मुनिआ की पतली आवाज उन्हें सुनाई देती रही मगर उसकी सूरत वह नहीं देख रहे थे ।

बार बार उनके भीतर सुधिया का प्रश्न गूँज रहा था–" बाबा ! यह परेम क्या होता है ?"

●

किस्सा शहरयार

ज्यूँ-ज्यूँ रात गहराती जा रही है, डर बढता जा रहा है । आज कौन-सी कहानी कहूँगी ? सभी तो कह चुकी । बचपन की सुनी हर कहानी खत्म हो गई। शायद आज की रात आखिरी रात हो । मौत ! उफ, इतने दिनों से टालती आ रही हूँ । किन्तु अब नही ।

हरम की बाँदियाँ अपने-अपने काम में मशगूल हैं । फर्श पर इतर, गुलाब छिडके जा चुके हैं । गुलाब के ताजे फूलों से भरे गुलदस्ते रखे जा रहे हैं । प्याले शराब से धुले जा रहे हैं । जलती अगरबत्तियों का धुआँ पूरे हरम को हल्के नशे में डुबाता जा रहा है । छुम छु छुम बाँदियों के पैर के बजते हुए घुँघरू । सभी अपने काम पर मुस्तैद । पान की गिलौरियाँ लिए रशीदा, इतरदान झुलाती हुई गुलनार, लडखड़ाते हुए कदमो को सहारा देने के लिए लैला की बेचैन नाज़, अदा, शबनम के हाथो में मीना, मुमताज के हाथों में सागर और साकी मुझे बनना होगा ।

शायद अभी-अभी यह शोरगुल थम जाए । केवल एक गहरी खामोशी और तन्हाई ही साथ रहे ।

"हाँ तो बेगम शुरू करो अपनी दास्तान ।"

"रात कहाँ तक बयान कर चुकी, याद है ?" मैं पूछती । ऐसे मैं जानती थी कि बीती रात शहज़ादा जब अपनी माशूका के लिए जंगल में भूख-प्यास से तडफ रहा था बादशाह को नींद लग गई थी और बहुत खुश होकर खुद मैं शहंशाह के आगोश में पड़ी बेहोश हो गई थी ।

"हाँ याद है ।" बादशाह सलामत सिलसिला जोड़ते और कहानी चल निकलती ।

किन्तु यह सब तो कभी का खत्म हो चुका। न जाने कितने बेऔलाद शहंशाहो को औलाद मिल गई, कितने शहज़ादों को उनकी शहज़ादियाँ मिल गयीं और वह

आज की रात बहुत पहले ही आनी थी । सभी को पता था ! जब मैं अपनी वालिदा से रुख़सत लेने आखिरी बार उनके पास गई थी वह रोते-रोते बेहोश हो चुकी थीं । अब्बाज़ान को तभी एहसास हुआ था कि जिस बादशाह के रिआया की कोई बेटी रात भर बादशाह की बेगम बन लेने के बाद सबेरे मरने के

लिए मजबूर हो उस सल्तनत के वजीर को अपनी बेटी का गला पैदा होते ही घोंट डालना चाहिए था । वे भीतर से बहुत उदास होने के बावजूद बादशाह की खातिर में लगे थे । मैं समझ रही थी उनका दर्द । आखिर वे मेरे वालिद थे । यह सब हुए एक अर्सा गुजर गया। गुजरे अर्से की याद । पहली रात के पहले की याद, फिर पहली रात फिर दूसरी रात फिर ।

''तुम बहुत खूबसूरत हो ।'' एक रात शहशाह ने कहा था । मै बेहद खुश हो गई थी । सोचने लगी थी शायद मेरा हुस्न ही बादशाह सलामत के दिल में मुहब्बत का वह शोला भड़का सके जिसके सहारे कुछ दिनों तक और जिन्दा रह सकूँ किन्तु वह सब तो एक लमहे के लिए था । तुरन्त वह अपने में लौट आए । ''तुमसे भी ज्यादा खूबसूरत लड़कियाँ मेरी आगोश से गुजर चुकी हैं । सभी एक तरह की होती हैं । न कोई खूबसूरत न बदसूरत । तुम सुनाओ अपनी दास्तान जो तुमसे कहीं ज्यादा हसीन है । क्योंकि दास्तान झूठे होते हैं । इसलिए उनकी हकीकत हमें मालूम रहती है किन्तु औरतें ?'' बादशाह सलामत खिलखिला पड़े थे।

'फिर कोई दास्तान !'

सोचती थी ये दास्तानें कभी नहीं चुकेगी । कितना गलत भरोसा था ? यदि पहले ही जानती कि कोई भी कहानी इतनी बड़ी नहीं होती जो किसी की पूरी ज़िन्दगी चलती रह सके तो कभी भी मैनें अपने लिए यह ज़िन्दगी नहीं चुनी होती। मगर अब पछताने से होता भी क्या है ? अब तो झेलना ही होगा । हाँ मौत भी झेलनी होगी और यह ज़िन्दगी भी ।

''बेगम ! दस्तर-ख़ान बिछा चुकी हूँ ।'' मलिका की आवाज सुन रही हूँ और देख भी रही हूँ सोने चाँदी की तश्तरियों की चमक । जी मे आता है हुक्म दे दूँ कि यह सब मेरी नजरों से दूर कर दिया जाए । मुझे भूख नहीं है और अगर है तो सिर्फ एक ऐसी कहानी की जिसे सुनाकर कल दिन भर की ज़िन्दगी वख़्शी जा सके । मुझे कुछ नहीं चाहिए । बस एक कहानी । किन्तु इतनी भी आजादी कहाँ ? अभी हकीमों का एक हजूम इकट्ठा हो जाएगा और फिर तीमारदारी का हंगामा शुरू होगा तो साँस लेना भी मुश्किल हो जाएगा । और यह भी तो कर चुकी। कितनी रातें केवल बहाना करके लेटी रह गई हूँ । पेट में दर्द नहीं रहने पर भी कराहती और बैचेनी का नाटक करती रही हूँ । मैनें शहंशाह को अपनी जिन्दगी के लिए परेशान भी होते हुए देखा है । किन्तु उस परेशानी का मतलब बस इतना रहा है कि मैं मर्ज से नहीं तलवार के घाट उतार दी जाऊँ ।

या अल्लाह ! या परवरदिगार ! तू तो सबकी दुआएँ कबूल कर लेता है फिर मेरी ही क्यों नहीं करता ? मैं तुम्हारी दी हुई जिन्दगी के एक-एक लमहे को जीना चाहती हूँ । मुझे कोई कहानी दे । या ख़ुदा

और मैं बैठी हुई हूँ । मेरे आगे बिछा हुआ दस्तर-ख़ान है । कीमा मुझे बचपन से ही पसन्द है । रसूलन पकाती भी अच्छी तरह है । अब्बाजान ने मुझे रुखसत करते हुए उसे साथ लगा दिया था । जबकि सभी को पता था कि मेरी

किस्मत में बहुत दिनों तक रसूलन के हाथ का खाना नही है । दूसरे दिन सवेरे ही लोग इन्तजार करते रहे । अब्बा तो उसी दिन अपनी बेटी की लाश देखने भी आये थे । सभी ने सोचा था कि सुबह होते ही मैं कत्ल कर दी जाऊँगी और शहंशाह की शादी फिर रचाई जाएगी । मैं भी अजहद डरी हुई थी । एक-एक लमहा बहुत बैचेनी से गुजरा था । और फिर दास्तान । एक ऐसे ज़ुबान की दास्तान जो डर के मारे बोलती चली गई हो और उसकी आवाज खुद ब खुद एक दिलचस्प कहानी बन गयी हो । एक

हाथ-मुँह धोने के लिए नजर उठाती हूँ । नगमा मेरी ओर गिलास बढ़ाती है । फातिमा पीकदान लेकर मेरे मुँह के सामने खड़ी हो जाती है ।

मलिका पूछती है, "आपने कुछ खाया ही नहीं । कोई नुक्स तो नहीं रह गया ?"

मैं खामोश अपने एक हाथ से इशारा करती हूँ—नहीं । परवेज के हाथ से रुमाल लेकर हाथ-मुँह पोंछती हूँ । रशीदा पान की गिलौरियाँ लेकर हाजिर होती है । पूछती है, "आपकी नाशादगी बेमानी नहीं हो सकती । क्यों ?"

मैं मुस्कराती हूँ तो वह भी मुस्कराती है और शायद उसे यकीन हो जाता है कि मैं खुश हूँ । कोई रंज नहीं । आखिर कहूँ भी तो किससे ? दुनियाज़ाद थी वह भी चली गई । उसे तो जाना ही था । आखिर उसे रोकती भी क्यों । उसने अपना फर्ज़ पूरा कर दिया। शहंशाह के दिल में कहानी की भूख उसी ने पैदा की। मैं तो सिर्फ एक जुबान थी । यदि उसने सुना नहीं होता तो पहली रात के बाद फिर मेरे लिये दूसरी रात आती ही नहीं । मैं और मेरी जुबान हमेशा-हमेशा के लिए इस दुनियाँ से खत्म हो जाते ।

'दुनियाज़ाद ! मेरी छोटी बहन, मुझे माफ कर देना । यदि कहीं तुम्हारी जलाई आग के लिए मैं ईंधन नहीं जुटा सकी और खुद जलकर राख हो गई । काश, इस व़क्त तुम क़रीब होती !'

आज तो जाने पहचाने चेहरे भी अजनबी लगते हैं । शायद तुम्हें भी हरम की इन बाँदियों की तरह नहीं पहचान पाती जो मेरी मौत का इन्तजार करती हुई लगती हैं । इन्हें तो आदत पड़ गई है । न जाने हर शाम कितनी नई नवेली दुल्हनों को पालकी से उतारकर ये हरम में ले गईं और सुबह के साथ ही उस दुल्हन का ज़नाज़ा उठते हुए देखा । मातम मनाती रहीं ।

नहीं, मातम मनाने का हक यहाँ किसी को नहीं । हुक्म है कि जिन आँखों में आँसू दिखे वे आँखें फोड़ दी जाएँ । जिस जुबान से चीख निकली वह जुबान काट ली जाएगी । हर एक को खुश रहना है क्योंकि शहंशाह की यही खुशी है ।

व़क्त करीब आता जा रहा है । कभी भी मैं सुन सकती हूँ कि शहंशाह जहाँपनाह तशरीफ ला रहे हैं । और फिर इस ख़्वाबगाह से ज़िन्दगी के सारे ख़्वाब हमेशा के लिये मिट जायेंगे ।

शायद सलमा है । हाँ वही है और वे आ रहे हैं । हर दरवाजे पर चिक

उठाए बॉदियॉ खडी हो गई है । मैं भी अपनी जगह से उठ खडी होती हूँ और खूब सजाई जाती हूँ जैसे मै कोई इन्सान नही होकर किसी जानवर का गोश्त हूँ जिसे कीमा-कबाव वनाकर बॉदियाँ शहंशाह के हुजूर मे रख देती हैं । चॉदी-सोने के तार जडे रेशमी सलवार चुभते हैं । गहनों का बोझ सहा नहीं जाता । ऑखों मे सुरमा लगाते हुए अक्सर गलती से सलाई आँखो मे घुस जाती है और पानी निकल आता है । अनचाहे ऑसू । अनचाही खुशी ।

जहॉपनाह के कदमों का बोसा लेती हूँ तो वे मुस्कराते हुए पूछते हैं, ''क्यों बेगम खैरियत तो है ?''

''नजरे इनायत है ।'' रटा हुआ जुमला अनायास मेरे मुँह से निकल जाता है । शहंशाह पलंग पर बैठते हैं तो अजीब तरह की चरमराहट होती है जैसे मेरी जिन्दगी पर ही पैर रख कर बैठ गए हों । उनके पाव की जूती उतारती हूँ और वे मेरी ओर गौर से देखते हैं । मुझे अपने हुस्न का एहसास अचानक फिर हो आता है ।

शबनम के हाथो की मीना ढुरक रही है । मुमताज के हाथों का प्याला छलक रहा है । शहंशाह के ओठो तक पहुँचते हुए मेरे हाथ अक्सर कॉंप-कॉंप जाते हैं ।

''तुम भी पियो बेगम ।'' अचानक अपने हाथ में प्याला लेकर वे मेरे ओठों से लगा देते हैं । अक्सर ऐसा करते हैं । पहले-पहल तो बिल्कुल ही नही बरदाश्त हुआ । कुछ ही कतरे हलक के भीतर पहुँचे होंगे कि उबकाई आने लगी थी । बहुत कोशिश से अपने को जब्त कर सकी थी । अब ऐसा कुछ नही होता । हल्का सरूर चढ़ जाता है । ''बस, ज्यादा नहीं । एक घूँट । नहीं तो तुम वह दास्तान नही सुना सकोगी जो बीती रात अधूरी रह गई थी । बोलो शहजादे का क्या हुआ ?'' वे पूछते हैं और पलंग पर पैर फैलाकर लेट जाते हैं ।

''क्या हुआ शहजादे का ?'' मैं स्वयं से पूछती हूँ और कोई जबाब नहीं बन पड़ता । उस परी ने शहज़ादे को एक वियावान जंगल में छोड़ दिया था । यही तक तो सुन पाई थी । इसके आगे मुझे नीद लग गई थी । फिर दूसरी रात उस कहानी का सिलसिला नहीं जुड़ सका । खाला ने एक नई कहानी शुरू कर दी थी।

मै उस शहज़ादे के बारे में सोचने लगी हूँ जो वहुत हसीन था, जो बहुत बहादुर था । जो अपने वालिद के आँखों का नूर था जिसे सारी रिआया दिलो-जान से चाहती थी । एक दिन जब वह जंगल में शिकार खेल रहा था उसे एक बेहद हसीन लड़की दिखाई पडी । उसने उस लडकी का पीछा किया । वह भागती गई और जंगल के बीच मे पहुँचकर अचानक गुम हो गई । वह परीज़ादी थी बस यही तक । एक इन्सान एक परीज़ादी के इश्क मे अपने घर का रास्ता खो बैठा । बस यहीं तक ।

''चुप क्यों हो ? बोलो न ! आगे क्या हुआ ?'' शहंशाह ने मेरी ओर रुख फेर लिया है । कहीं मेरी बेबसी का राज जाहिर न हो जाए । कहीं मेरी जिन्दगी चुक न जाए । मै मुस्कराती हूँ, ''इतनी बेसबरी क्यों ? अभी तो आप आए हैं । मैं अपने सरकार को पूरी नजर देख तो लूँ ।''

"यह किसका कलाम कह रही हो, उस परीजादी का जो शहजादे को छोड गुम हो गई थी या उस शहजादे का जो परीज़ादी की तलाश में अपना रास्ता ही खो बैठा था ?" शहंशाह के खौफनाक वहशियाना हँसी से डर जाती हूँ फिर भी कोशिश करती हूँ कि मेरा चेहरा कहीं आजुर्दा न पड़ जाए । मेरी आँखों में कहीं सैलाब न उफन पडे ।

"इतनी बेरुखी भी क्यों मेरे परवरदिगार ? कुछ तो मौका दीजिए ।"

शहशाह उठकर बैठ जाते हैं । मुझे बहुत करीब बुलाकर थोड़ी देर तक घूरते रहते हैं और पलकें मूँदे हुए खामोश लेट जाते है ।

जलते हुए चिरागों की रोशनी भी जैसे वक्त से पहले खामोश होना चाहती हो । सब कुछ धुँधला पडने लगा है । लाख कोशिश के बावजूद भी आँखों में पानी भर ही गया ।

"वह शहजादा अचानक एक मामूली आदमी बन गया ।"

"क्या ? शहंशाह चौक जाते ।"

हाँ, मेरे मालिक वह शहज़ादा अचानक एक मामूली आदमी बन गया । उस जंगल का जादू ही कुछ ऐसा था । उसकी शक्ल बिलकुल बदल गई । उसके नाजुक ओठ रुखे पड़ गए । उसकी शीशे की तरह झलकती बाहें किसी पेड़ के डाल की तरह खुरदरी हो गई । शाहाना लिबास की जगह उसके ज़िस्म पर एक मामूली सा पायजामा और नमशतीन रह गया। उसके सर पर ताज की जगह एक फटी पगड़ी ने ले ली । उसकी कमर में लटकता हुआ खंजर फावड़ा बन गया । जिस इराकी घोडे पर सवार होकर वह इस जंगल तक पहुँचा था वह बदल कर एक गधा हो गया । और सबसे बड़ी बात यह हुई कि उसे अपनी इस तबदीली का जरा-सा भी एहसास नहीं रहा । वह फावड़े से मिट्टी खोदकर गधे पर लादने लगा जैसे जव से वह पैदा हुआ है यही काम करता आ रहा है । अब न तो वह खुद को पहचान सकता था और न तो कोई गैर ही पहचान सकता था । वह

"और वह परीजादी," शहंशाह पूछ पड़े ।

"वह उसकी बीबी बनकर उसके काम में हाथ बँटाया करती थी । अकरम फावड़े से मिट्टी खोदता और रशीदा गधे पर पडे खोमचे में मिट्टी उठाकर रखती और जब गधे का बोझ पूरा हो जाता तो वे दोनों गधे के आगे-पीछे चलते हुए दमिश्क शहर में बेचने निकल जाते थे । वे दोनों एक दूसरे से बेहद मुहब्बत करते थे ।"

"गलत ! यह गलत है ! कोई भी औरत मुहब्बत नहीं कर सकती । वह मुहब्बत का सिर्फ नाटक खेल सकती है ।" शहशाह का चेहरा सुर्ख हो गया । आँखों से जहरीली चिनगारियाँ निकलने लगी हैं ।

"मेरे हुजूर ! क्यों भूलते हैं कि मैं एक दास्तान सुना रहीं हूँ ।" मैं मुस्कराती हूँ ।

"ओह ! मै सचमुच भूल गया था । यह तो मुझे पहले ही पता होना चाहिए था कि सच्ची मुहब्वत सिर्फ एक झूठी दास्तान है । तुमने जो एक मामूली इंसान

का नाम लिया था न बस इसी से गलतफ़हमी हुई ।'' वे ही-ही करके हॅस पडते हैं ।

''प्यास लग आई है।'' जब उनकी हॅसी रुकती है तो वे कहते हैं ।

मैं धीमे पाँव उठकर प्याले में शराब उड़ेलती हूँ । वे मेरी ओर देखते रहते हैं । ओठों तक प्याला पहुॅचते-पहुँचते लगता है वह मुस्करा पडे । नहीं मुस्कराए। बड़ी सफाई से टाल गये और एक ही घूँट में प्याला खाली कर लेने के बावजूद देर तक ओठों से प्याला चिपकाए मुझे देखते रहे ।

खाली प्याली मेरी ओर बढ़ाते हुए कहते हैं ''तुम बहुत दिलचस्प हो ।''

''बस !'' मैं मुस्कराती हूँ ।

''नहीं तुम एक औरत भी हो ।''

हजार-हजार बिच्छुओं के डंक से अधिक ज़हर है उनके 'औरत' कहने में । मैं तिलमिला उठती हूँ ।

''हॉ तो फिर क्या हुआ ?'' वे लेट जाते हैं । मैं तुरन्त अपने पर हावी नहीं हो पाती । उन दिनों को याद कर पाने की कोशिश करती हूँ जब मेरी एक नई हवेली बन रही थी और अकरम अपनी बीबी के साथ रोज मिट्टी बेचने आता था। वह बोलने से अधिक हँसता था । जब वह अपनी बीबी को गधे पर बिठा कर अपने घर की ओर लौटता, तो कितना खुश दीखता था । उस खुशी का राज पहले नहीं समझ सकी । अब तो वक्त काफी निकल गया । समझ पाने से भी क्या होता ?

''सुनाओ न !'' शहंशाह रुख़ फेर लेते हैं ।

''हाँ, तो बहुत आसान ढंग से उनकी ज़िन्दगी गुज़र रही थी । कोई गम नहीं । दोनों मिलकर जितना कमाते थे उसी में खुश थे । उनकी ख्वाहिशें बहुत ही महदूद थीं । खाने को चने की रोटी, पहनने को थोड़े से मोटे-झोटे कपड़े, रहने को एक छोटी-सी झोपड़ी । एक दिन जब वे गधे की पीठ पर मिट्टी लादे शहर की ओर जा रहे थे, रशीदा को रास्ते में प्यास लग आई । वे दोनों एक नदी के किनारे पहुँचे और पानी पीकर थोड़ी देर सुस्ताने के लिए एक घने दरख़्त के नीचे बैठ गये। गधा वहीं सर झुकाये आस-पास घास चरता रहा । फिर वे कुछ बातचीत में इस तरह मशगूल हो गये कि उन्हें खुद की भी खबर नहीं रही । जब वे वहाँ से चलने को हुये तो उन्होंने देखा गधा गायब हो गया था । पहले तो उन्होंने पूरे भरोसे के साथ गधे की इधर-उधर तलाश की, मगर जब वह कहीं नहीं दिखाई पड़ा तो उनकी परेशानी बढ़ गयी । बहुत तलाश के बाद उन्होंने देखा कि उनका गधा एक दलदल में फँस कर मर गया है ।

''गधा मर गया ।'' शहंशाह इस तरह चौंके जैसे कोई शहज़ादा मर गया, जैसे कोई सल्तनत पलट गई, जैसे दुनियाँ पर कोई मातम का पहाड़ टूट गया ।

''हाँ गधा मर गया, जो उनकी रोटी का सहारा था, जो उनकी खुशी का राज था । जो उनका इकलौता मददग़ार था ।''

''बेगम! मेरा गला खुश्क हो गया है ।'' वे मेरी ओर इस तरह देखते हैं

जेसे वे खुद अकरम हों और उन्हीं का गधा मर गया हो । प्याला ओठों से अभी भी लगा है । लगता है कुछ सोच रहे हैं । अजीब सी उदासी उनके चेहरे पर घिर आई है । आखिर क्यो ? शायद मेरी आवाज मे ही कुछ दर्द भर आया हो । हो सकता है । उस दिन तो मैं सचमुच रुआँसी हो गयी थी जब अकरम और रशीदा अपने माथे पर मिट्टी का खोमचा लिए आये थे । उन दोनों का मिला-जुला बोझ भी उस गधे के बोझ का आधा रहा होगा । पैसे भी कम मिले थे । उन दोनों को बेहद उदास देखकर मैनें उन्हें अपने करीब बुलाया था । वजह पूछने की हिम्मत नहीं हो रही थी फिर भी पूछ पड़ी थी, 'गधे को बेच दिया क्या ?' वे दोनों देर तक खामोश रहे और फिर किसी तरह लडखड़ाती जुबान में अकरम बोल सका था, 'मर गया ।'

''बेगम ! मुझे यह बताओ कि वह मामूली आदमी फिर शहज़ादा बनेगा या नहीं ?'' शहंशाह के हाथ में खाली प्याला है और वे मेरी ओर घूर रहे हैं ।

''मेरे आका ! इतनी लम्बी दास्तान को दो लफ्ज़ों मे कैसे बयान कर दूँ ?''

शायद शहंशाह को नींद आने लगी है । इसलिए वे चाहते हैं कि अपनी दास्तान को छोटी बना दूँ । मगर मैं जिन्दा रहना चाहती हूँ । आज की रात तो जी चुकी, कल भी जिन्दा रहना चाहती हूँ ।

''वहुत लम्बी दास्तान है ?''

''हाँ मेरे परवरदिगार ! बहुत लम्बी दास्तान है । यह तो अकेले अकरम के दास्तान की शुरूआत है । अभी उसके साथ सैकड़ों लोग थे । सभी शहज़ादे थे । कोई राजगीर हो गया था, कोई बढ़ई, कोई किसान और ''

''अच्छा ! कल फिर सुनेगें । चलो एक दिन की जिन्दगी तुम्हे और बख़्श दी ।''

मैं खुश हो जाती हूँ । बहुत खुश । मुझे यकीन हो जाता है कि आने वाली हर रात को मैं जिन्दा रहूँगी । मेरी कहानी कभी नहीं चुकेगी । मैं कभी नहीं मरूँगी। अकरम जैसे बेशुमार इन्सानों के जीते जी मैं मर नहीं सकती ।

●

एक मोटा आदमी

अभी कुछ ही देर पहले खाना खाकर आराम कर रहे थे किन्तु अब वे जग चुके थे और चारपाई पर बैठे जम्हाई ले रहे थे कि कौन-सा काम करें । उन्होंने भोज को आवाज दी, पहले कुछ धीमी आवाज में और फिर बहुत तेज आवाज में । वह खस की टट्टियो पर पानी छिडकना बन्द करके बरामदे में सुस्ता रहा था । पहली आवाज सुनते ही उसने फिर पानी छिड़कना शुरू कर दिया किन्तु दूसरी आवाज । वह भागता हुआ कमरे में पहुँचा था ।

''फोन यहाँ लाना ।'' भोज ने उनके सामने रखी छोटी मेज को खिसका कर बिल्कुल करीब कर दिया जिससे वह आसानी से अपने हाथों उठा सके ।

''जाओ !'' भोज को सामने खडा देखकर उन्होंने आज्ञा दी थी और जब वह कमरे से बाहर निकल गया तो एक गिलास पानी मँगाने का ध्यान आया था । उन्होंने भोज को फिर आवाज दी थी, ''एक गिलास पानी लेते आना ।''

उन्होंने खुले मुँह के सामने चुटकी बजा-बजाकर अलाप जैसी जम्हाई ली थी । वह किसे फोन करें ? अब उनके दोनों जबडे दुरूस्त हो गये थे और वह साधारण ढंग से साँस ले रहे थे । अचानक उनकी नजर बायीं ओर की मेज पर चली गई थी । आज छुट्टी थी इसीलिए उन्होंने दफ्तर की तमाम जरूरी फाइलें घर पर ही मँगा ली थी कि वह खुद इन फाइलों को पूरी तरह देख लेने के बाद ही कोई निर्णय देंगे । भोज ट्रे में गिलास लेकर पहुँचा तो उन्होंने फोन उठा लिया, और डायल घुमाने लगे थे। ''मिस्टर माथुर हैं ?'' एक सुरीली आवाज के जवाब में पूछे थे ।

''मै गोयल बोल रहा हूँ ।'' और उन्होंने सुना कि वह आवाज घबराकर भाग रही थी क्योंकि उसे पता था कि गोयल नाम की हस्ती घोष का बॉस है और घोष की जिन्दगी बनाना या बिगाड़ना भगवान के हाथ में न होकर उनके हाथ में है । वह फोन पकड़े हुए मुस्कराये, भोज सामने ट्रे लिए खड़ा है किन्तु उधर उन्होंने ध्यान ही नहीं दिया ।

''हैलो ।'' वह बिल्कुल ही नही चौंके और बिना किसी भूमिका के आदेश दिया था । ''अभी चले आओ, हाँ अभी'' और फोन रख दिया था ।

भोज गिलास की ट्रे लेकर करीब हो गया था । दो घूँट पानी पीकर गिलास ट्रे में वापस रख दी और लेट गए । कुछ क्षणों तक उनकी दृष्टि डोलते हुए

पखे पर जमी रही और वे भीतर से पूरे छत को बिना कहीं दृष्टि जमाए देखने लगे। एक कोने का नीला रग कुछ उड गया था । माथुर आता है तो वह उसे डॉट लगायेगे कि वह फिर से उन मजदूरों को यहॉ तलब करे । लोग कितने बेईमान हो गये है । महीने भर भी रँगाए नहीं हुआ और रंग उडने लगा ।

"अरे भोज मेम साहब जगी है ?"

"देखता हूँ साहब ।" और वह जाने लगा तो उन्होंने धीमी आवाज मे, किन्तु इतनी धीमी आवाज मे नही कि भोज सुन ही नही सके कहा कि यदि मेम साहब जगी हो तो वह उन्हें यहीं बुला लाए । उन्होंने एक अंग्रेजी पत्रिका उठा ली थी और लेटे-लेटे उसके पन्ने पलटने लगे थे । इस बीच मेम साहब की आवाज भी सुनाई पड़ी थी । "मूरत अभी तक नहीं लौटा । अजीब तमाशा है क्या समय होगा ? दो बज गए ।" उन्हे ख्याल आ गया था कि वह उन्हीं से पूछकर 12 बजे वाला शो देखने गया है और अभी सिर्फ दो बजे हैं ।

अपने कमरे की ओर आते हुए मेम साहब के पैरों की आहट सुनाई पडी थी, वे दरवाजे पर लगे पर्दे की ओर देखने लगे थे । एक हाथ मे पडी पत्रिका नीचे फर्श तक झूल गई थी । मेम साहब से दृष्टि मिलाते ही वह हल्के से मुस्कराए और हाथ की पत्रिका एक किनारे मेज पर फेंक दी । मेम साहब को अपने सामने किसी पत्रिका के पन्ने पलटे जाना एक खुला चैलेंज लगता है । कई बार तो उन्होने स्वयं गोयल साहब के हाथ से पत्रिका छीनकर फेंक दी होगी जैसे कह रही हो, "मै क्या किसी पत्रिका से कम हूँ ? मेरे ही पन्ने क्यों नहीं पलटते ?"

"क्यों क्या बात है ?" मेम साहब चारपाई से कुछ दूर पर खडी हो गई थी ।

"बैठो न !" उन्हे स्वयं उठ बैठने में काफी परिश्रम करना पड़ा । वे अभी भी दोनो हाथों से पलग की दोनो पाटियो को पकडे हुए थे ।

मेम साहब ने दो डग आगे बढ़ाकर आरामकुर्सी खीच ली और बैठ गईं।

"कुछ हो जाय ।" वह गहरे मुस्कराए ।

"मै नही खेलती । पहले कल के मेरे बीस रुपये लाओ ।"

"ले लेना ।" सही मायने में कुछ हो जाये से उनका अभिप्राय कुछ खाने-पीने से था ।

"ले नहीं लेना, अभी लाओ ।" लगा था कि वे सचमुच मौसम की तरह गर्म हो रही है ।

"तुम तो जानती हो ताश के उधार का भुगतान कभी नहीं होता ।" उनके ऊपर के नकली दाँत खिलकर बाहर आ गये थे ।

"मै यह सब नहीं जानती । पहले रुपये लाओ इसके बाद पहले यह देखो कार्पेट की क्या हालत हो गई है ?" वे दोनों एक साथ कार्पेट देखने लगे थे । कार्पेट में जूते के तल्ले के बराबर सुराख हो गया था ।

"घोष को बुलाया है । उसे याद दिला देना । यह दफ़्तर में चला जाएगा। दफ्तर वाला यहाँ मँगा लेंगे ।" उन्होने पूरी ईमानदारी से यह बात कही।

वे गंभीर हो गए थे ।

"देखो घोष आज मुर्गा लाता है या नहीं ।"

"नहीं लाएगा ।"

"मैं कहती हूँ लाएगा ।"

"चलो हो जाए इसी बात पर दस-दस रुपये की"

"निकालो दस रुपये ।"

"चलो उधार रहा"

"हूँ किस मुँह से उधार का नाम लेते हो ? कभी उधार दिया भी है ?" मेम साहब का चेहरा किसी साहूकार के चेहरे की तरह कठोर हो गया । आँखों से टपकती उपेक्षा जैसे चश्मे के शीशे पर भाप की तरफ फैल गई हो । गोयल ने देखा और बेहयाई की हँसी से उसे पोंछना भी चाहा किन्तु नहीं पोंछ सका । उसने एक किनारे पड़ी पत्रिका उठा ली और उसके पन्ने पलटने लगा ।

"सुनो, लस्सी बनवाओ ।" पन्ना पलटते हुए उन्होंने कहा जैसे पत्रिका की कोई पंक्ति पढ रहे हों ।

"अभी मूरत नहीं आया । समय क्या हुआ होगा ?" मेम साहब की दृष्टि दीवाल-घडी की ओर चली गई थी।

"पौने तीन । आता ही होगा । हाँ कल मनीआर्डर करा दिया था ?" मेम साहब नरम पड गई थीं ।

"हाँ भई ! रसीद तो तुम्हें दे दी थी ।"

"उन्हें पत्र लिख दो कि दोनों चले आएँ । एक-डेढ़ महीने तो हो गए और अब जुलाई आ रही है ।"

"तुम्हीं लिख दो । डेढ़ महीने में हजारों रुपये फूँक गये ।" उन्होंने पत्रिका फेंक दी ।

"तो क्या हुआ ? बाप के राज में नहीं फूँकेगे तो कब फूँकेंगे ?"

गोयल को मेम साहब की यह बात अच्छी लगती है । अब तक क्षण भर पूर्व का कालिख उनके चेहरे से बिल्कुल धुल चुका था । वे महसूस करने लगे थे कि अपने बच्चों की माँ से बात कर रहे हैं ।

"राजीव यदि इस साल भी आई.ए.एस. में नहीं आता तो किसी प्राइवेट सर्विस में भेज देंगे ।"

"तुम कोशिश ही नहीं करोगे तो आयेगा कैसे ? दूसरों के लिये तो इतनी सिफारिशें करते हो और अपने बेटे के लिये ।"

"तुम समझती तो हो नहीं । प्राइवेट सर्विस में क्या कम फायदा है ? किसी वड़ी फर्म में चला जायेगा तो भी कम रुपये नहीं पीटेगा ।"

"तुम जानो । हमको क्या करना है ।" मेम साहब के दोनो पाँव नीचे थे। अब उन्होंने बांया पांव उठाकर दांये जंघे पर रख लिया और एक गहरी साँस लेकर छोड़ दिया । "अभी तक घोष नहीं आया ।"

"आता होगा । पता नही क्यों सर भारी लग रहा है ।" गोयल ने मेम

साहब का ध्यान अपनी ओर खींचने के लिए वैसे ही कह दिया । "सर तो मेरा भी भारी है । आजकल गर्मी बहुत बढ़ गई है ।" मेम साहब ने साडी का एक छोर हाथ मे लेकर अपने गले के चारो ओर ब्लॉटिंग पेपर की तरह फिरा दिया, गोया पसीना होने वाला हो ।

"अखबार में था कि कल एक आदमी लू से मर गया ।" गोयल की आवाज में दु:ख से अधिक इस बात का संतोष था कि उनकी कोठी के सभी कमरो में कूलर है और गर्म हवा उन्हे केवल अखबार से ही मिल पाती है । "अरे मूरत अरे भोज नाम ही भूल जाता है तुम्हारा।" वे भोज की ओर देखकर मुस्करा पड़ी। एक गिलास पानी पिलाओ ।

"एक गिलास मेरे लिए भी ।"

गोयल साहब को प्यास नही लगी थी, अचानक लग आई ।

"हम लोगों को इस कमरे मे बैठे-बैठे गर्मी लगती है और एक भोज को देखो ।" भोज के चले जाने पर मेम साहब ने बहुत तरल आवाज में कहा ।

"आदत पड़ने की बात है ।" गोयल साहब की ललाट पर कई रेखाएँ एक साथ उभर आई थीं । उन्हे लगा था जैसे उन्हीं की तुलना भोज से की जा रही है ।

भोज ट्रे मे दो गिलास लिये पहुँच गया था । पहले मेम साहब की ओर फिर साहब । "मेरे कमरे का पंखा बन्द कर देना ।" मेम साहब ने ट्रे में गिलास रखते हुए कहा । गोयल साहब अभी हाथ मे गिलास लिये थे परन्तु पानी पीने लगे जैसे भोज को पंखा बन्द करने के लिए नहीं बल्कि उन्ही को पानी पीने का आदेश दिया जा रहा है ।

"अगले महीने इसके लिये एक नई कमीज सिलवा देगें ।"

"अभी कितने दिए हुए सिलवाए ? दीवाली पर ही तो सिलवाये थे," गोयल साहब खीझ गये जैसे दफ्तर का खाता चैक कर रहे हों ।

"तो क्या हुआ ? देखते नहीं कितनी फट गई है ?"

"एक ही कमीज सारे घर वाले पहनेगे तो फटेगी नहीं ? देखो न छत का रंग कितनी जल्दी उखड गया ।" मेम साहब की दृष्टि भी छत की ओर टँग गई थी ।

"हाँ, अभी हुए ही कितने दिन ? यह तो ।"

"हैलो, गोयल साहब ने अपना रिसीवर उठा लिया था ।"

"किसका फोन है ?"

"क्या कहा ?" मेम साहब के प्रश्न की ओर ध्यान नहीं दिया । "कल सभी कागजात सेक्रेट्री साहब को भेज देने हैं । तो मैं क्या करूँ मैं यह सब नहीं जानता ।" और उन्होंने फोन रख दिया । "घोष का था । कह रहा था कि उसके लडके की तबियत अचानक खराब हो गई है । सब वही है । आज छुट्टी का दिन है, आना नहीं चाहता होगा । अब कल भी नहीं आयेगा । बहुत कमीने हो गये हैं। थोडी-सी लिफ्ट दे दो तो सर पर चढ़ जाते हैं । देखूँगा कैसे प्रमोशन मिलती है ।"

"तुम भी इतनी जल्दी गुस्सा हो जाते हो । हो सकता सचमुच बेचारे का लड़का बीमार पड गया हो ।"

"घोष तो ऐसा नहीं था ।" मेम साहब को आश्चर्य हुआ था ।

"तुम क्या जानो इन लोगों को, सभी एक जैसे हैं ।" गोयल साहब फोन मिलाने लगे थे ।

"हैलो ।"

"मैं गोयल बोल रहा हूँ मिस्टर सोनी को बुलाइए नहीं हैं ? रात को लौटेंगे । अच्छा ।"

"सोनी भी नही है ।" उन्होने फोन रख दिया । कहलवा दिया होगा कि नही हूँ । कोई भी काम नहीं करना चाहता । "मेम साहब की ओर याचनापूर्ण आँखों से देखने लगे थे ।"

"तो क्या हो गया ? कल करा लेना ।" मेम साहब पीठ खुजलाते हुए छायावादी ढंग से मुस्करा पडीं ।

गोयल साहब भी मुस्कराए, "काम तो आगे-पीछे होता ही रहेगा किन्तु इन लोगों की अनुशासनहीनता तो देखो । ये सब समझते हैं कि इन्हीं के हाथ में शासन का चक्का है । जब चाहे बन्द कर दिया । मैं एक-एक को देख लूँगा ।" गोयल साहब कठोर हो गए ।

"छोड़ो भी. ।" मेम साहब ने कुर्सी के पीछे अपनी दोनों बाहे फेंक दी थीं । गले के नीचे दूर तक किसी फाइल के कोरे पन्ने की तरह गोयल साहब की आँखों के सामने खुला हुआ था ।

"तुम्हारे सामने अभी चेक करता हूँ इन फाइलों को, देखना कितनी गलतियाँ निकलती है । उन्होंने फाइलों की ओर भी आदेशनात्मक दृष्टि से देखा था जैसे वे सभी फाइलें क्लर्क तथा उनके मातहत छोटे अधिकारी हो । वे चारपाई पर दोनो हाथो के बल पेशाब करने के लिए उठे थे । अजीब मजबूरी है कि आदमी को कुछ काम खुद करने पड़ते हैं । जैसे पेशाब करने का काम और इसी तरह के और काम जिनके लिए नौकर नहीं रखे जा सकते । दोनों चप्पल इधर-उधर हो गए थे। उन्होंने पाँव से खींचकर ठीक किया और दो चार डग से अधिक नहीं चले होंगे कि उन्हे लगा धरती डोल रही है । भूचाल आ गया है । वे बुरी तरह घबरा गए और मुडकर उन्होंने मेम साहब को पकड़ लिया । "भूचाल आ गया ।" मेम साहब भी कुर्सी से उतर गई थीं । वे दोनों एक साथ बैठे हुए महसूस कर रहे थे कि धरती करवट बदल रही है । छत का रंग ही नही, चारो दीवालें अभी ढहने वाली हैं । वे दोनों पसीने से भींग गये थे । कुछ क्षणों के बाद स्वस्थ होने पर गोयल साहब ने एक दैनिक पत्र को फोन मिलाया था ।

उन्हें विश्वास था कि कम से कम आज प्रेस में छुट्टी नही होगी । "हैलो मैं डिप्टी सेक्रेट्री गोयल बोल रहा हूँ । क्या अभी-अभी भूचाल आया था ? क्या कहा इस तरह बहुत से फोन आपके पास आ चुके ? तब तो निश्चय ही आया होगा ।" उन्होंने बहुत उपेक्षा से फाइलों वाली मेज की ओर देखा । पेशाब तो करना ही था वे बहुत धीरे-धीरे चल पड़े ।

करमजली

भजन सोखा है कई दिनां से बटरी के घर रात को ओझाई करने पहुँच जाता है ।

रामऽऽ राऽऽ राऽऽ राऽऽ

"गाय गोहार, बालक गोहार, तिरिया गोहार, तीनो गोहार, हे माई ! एतनी जून, एतनीं घरी, एतनी पहर, आके खडी होजा ।"

बटरी को लगता है कि ये सारी आवाजें उसे चारों ओर से छेदती हुई, घेरती जा रही हैं । भजन सोखा अपनी कौडी जैसी आँखें बाहर निकाले घूर रहा है । उसका काला-भुजग चेहरा, जो चेचक के दाग से और भी ऊबड़-खाबड़ हो गया है, किसी शैतान के चेहरे की तरह उसकी ओर बढ रहा है । भजन के हाथ का लपलपाता हुआ बेंत काले नाग की तरह उसे डसना चाहता है । वह जोर से चीख पडी । उसका सिर पीछे की कच्ची दीवार से टकराया और वह कटे रुख की तरह भहरा गयी ।

कल बटरी की बडी बहन रमबसिया ने जो चीख सुनी तो बर्तन माँजना छोड दिया । वैसे ही गदे हाथों दरवाजे पर खडी होकर आहट ली । धीरे से चँचरा हटा भीतर झाँक कर देखा । बटरी बेहोश हो गई थी । उसके दाँत जकड़ गये थे। रमबसिया ने बटरी के मुँह पर पानी गिराया । उसकी नाक दाबी और दाँतों की जकड़ को छुड़ाने की कोशिश की, किन्तु बटरी सुगबुगाती और मुर्दे की तरह ढिमला जाती । ऑखे खोलती और बंद कर लेती, जैसे वह अपनी बडी बहन रमबसिया को नहीं, साक्षात यमराज की तरह भजन सोखा को देख रही हो ।

'हे माई । बतावे के पडी । दैवी-दुख है या कौनो दूसरे कारन है ? कौन पेंच पडि गइल हे माई ? कौन चूक हो गइल ? '

रमबसिआ ने हारकर वहीं से गोहार लगानी शुरू की । पहले अपने काका को, फिर भइया को और जब उसकी गोहार घर के छप्पर से टकराकर वही घर के कोनों मे छितरा गयी तो उसकी घबराहट वढ़ गयी । उसने बटरी के अस्त-व्यस्त कपड़ों को ठीक किया । उसे बहुत जतन से उठाकर तरई पर लिटा दिया और दुआर पर निकल आयी ।

दुआर सूना था । चादर पर सूखने के लिए पसारे गये धान को चिडियों

का एक झुंड चुग रहा था । मानुष-गध पा कर चिड़ियों का झुंड हवा मे एक आवाज भरता हुआ, उड़ गया । रमबसिआ ने आधी चादर उलट कर पथार ढँक दिया। उसकी समझ मे नहीं आ रहा था कि वह क्या करे । उसका वाप हरवाही गया है। उसका भैया घास छीलने गया है । वह अकेले क्या करे ?

उसने दुआर पर से ही हाँक लगायी, ''काकी ! ओ काकी !''

बचनू की मॉ धान कूट रही थी । ढेंका की आवाज के बीच रमबसिआ की आवाज कई वार कुट गयी । रमबसिआ की आवाज जब बहुत तेज हुई तब जा कर कहीं उन्हें भनक मिली कि कोई पुकार रहा है । वह घर से बाहर निकली तो रमबसिआ बाहर दिखाई पड़ी । वह हाथ डुलाकर बुला रही थी-''दौड़ आओ काकी ।''

वचनू की माँ अपने घर का चँचरा वैसे ही खुला छोड कर चली आयी । इसके पहिले कि बचनू की माँ कुछ पूछे, रमबसिआ आगे बढ़ कर कहती गयी, ''काकी ! तनिक देर बटरी के पास बैठो । वह फिर बेहोश हो गयी है । मैं साहब के घर से अभी आती हूँ ।''

बचनू की मॉ कुछ अधबोली बाते करती भीतर घुस गयी, ''जल्दी आना। हमारे घर का चँचरा लगाती जाना ।''

बटरी के पास अकेले बैठते हुए काकी को भी डर लगता है, जैसे बटरी के पास नहीं किसी चुड़ैल के पास बैठी हों । कैसी हो गयी है । पक्का सोने का रंग झाँवर पड गया है । रुखे बाल जैसे कोई झाड़ी हो । कई दिनों से शरीर पर पानी नहीं पडा है । कभी यही बटरी शरीर पर मक्खी नहीं बैठने देती थी और अब कपड़ों से इतनी बदबू फूटती है कि पास बैठना मुश्किल । सूख कर लकडी हो गयी है । सीने का एक-एक बाता गिना जा सकता है । कौन कह सकता है कि यही बटरी है जिसका महीना दिन पहले गौना हुआ था, जिसके लिए गंधक में अभरक डाल कर चौड़े पाट वाली फर्दी साड़ी काकी ने अपने ही हाथों रँगी थी, अपने ही हाथों चोटी पूरी थी, माँग में सिन्दूर भरा था । कनफूल, बाजू, हुमेल, करघनी, ससुराल से मिले एक-एक गहने को अपने हाथों पहनाया था । माथे पर चार लर का मँगटीका लगाते हुए काकी ने उसे अँकवार में भर लिया था । दोनों फूट-फूट कर रोने लगी थीं ।

काकी ने अपने मन को बहुत कुछ समझा-बुझा कर बोधा शान्त किया था। सिसकती हुई बटरी को ढाढस दी थी-''जब तक मै हूँ यह मत सोचना कि तुम्हारी महतारी नही है। दस दिनों बाद ही कह-सुन कर तुम्हें बुलवा लूँगी तुमसे कौन पट्टीदारी है । औरत जाति का गुजर अपने माँ-बाप के घर नहीं होता । कुछ दिनों बाद हम लोग पराये हो जाएँगे । वही तुम्हारा घर हो जाएगा ।''

काकी किनारे से सरक कर बटरी के पास सट आयीं । काकी ने एक हाथ से बटरी की नाक दबायी । बटरी छटपटाने लगी । काकी को लगा कि बटरी होश में आ रही है । उन्होने नाक की पकड़ ढीली कर दी । आँगन से लोटे में पानी

लाकर उसके मुँह पर छिटका दिया । दाँतों की जकड़ छुडाते हुए चुल्लू भर पानी मुँह में गिरा दिया । बटरी की सीपी जैसी आंखें खुल गयीं । काकी ने अपने आँचल से उसका मुँह पोंछा और आँखों की पपटी सहलाने लगीं । बटरी की चेतना लौट रही थी । उसकी उतान आँखों को छप्पर की लरही दिखाई दी । छाती पर बहक कर गिरी हुयी पानी की बूँदों की शीतल छुअन उसे महसूस हुई । उसने मुड़कर सिरहाने की ओर बैठी काकी को देखा । काकी की भरी-भरी आँखों को देखकर वह चिहुँक गयी–"तुम रो रही हो काकी ?" बटरी काकी की ओर मुँह फेर कर बैठ गयी ।

काकी ने अपनी आँखें पोछ लीं । नाक छिनकने के लिए वहाँ से उठकर किनारे हुई । मिट्टी की दीवार से हाथ पोंछा और कुछ परे होकर बैठ गयी–"नहीं तो रे ! तुम ठीक हो जाओगी । यही दो एक दिन और दुःख सहना बदा है । सब ठीक हो जाएगा । सब दिन बराबर नहीं होते ।"

"हमें कुछ नहीं हुआ है काकी । ही ऽऽ ही ऽऽ ही ऽऽ ।"

बटरी का हँसना देख कर काकी सहम गयीं । उन्हें लगा कि भूत फिर लौट आया है । काकी कुछ परे हट गयीं, "इस तरह नहीं हँसते बिटिया ।"

"ही ऽऽ ही ऽऽ हीऽऽ ।" बटरी और जोर से हँसने लगी । उसका माथा ठीक भजन सोखा की तरह झूमने लगा ।

भजन सोखा पर जब देवी चढ़ती है तो उसकी आवाज बदल जाती है । बोलता है तो जैसे बिजली कड़कती है । जलते अंगारे खा डालता है । भवानी का खप्पर अपने सर पर पगड़ी की तरह रख लेता है । बहुत जगता सोखा है । जिस गाँव में भजन का पौरा पहुँच जाए, भूत सिवान छोड़ जाते हैं । भजन के बेंत की मार से भूतों की रुह काँपती है । बहुत साँसत करता है । कितने भूतों को तो बँधुआ बनाकर उसने अपने घर में डाल दिया है । भूत उसके सामने हाथ जोड़ते हैं।

"हम कहाँ जाएँ ? कहाँ रहें ? क्या खाएँ ?"

पहले तो भजन फूहड़ गालियाँ देता है । फिर पिघल कर स्थान बताता है । "सिवान से बाहर, सौ कोस पार, दुश्मन के घर पर, जामुन के पेड़ पर, बरगद के पेड़ पर, कहीं चला जा । लँगोट मिलेगा । अतवार के दिन साँझ को तुम्हारे थान पर गाँजा पहुँच जाएगा । आधा सेर शराब चढ़ जाएगा। बोल जा रहा है कि नहीं ?"

"जाता हूँ ।"

"इतने पंच के सामने थूक कर चाट ले कि परतीत पड़ जाए ।"

भूत थूक कर चाटता है । भजन सोखा अपनी पूजा ले कर चल देता है। फिर भूत के ही साथ लौटता है ।

"बटरी !"

गोकुल बाबू की आवाज ने जैसे बटरी के हिलते हुए सिर को दोनों

कनपटियों से दबा कर स्थिर कर दिया । बटरी ने एक पल गोकुल बाबू की ओर घूर कर देखा जैसे अपने ही भीतर का टाट फाड़ कर झाँक रही हो और तुरन्त आँखे झुका ली, जैसे उसकी आँखें चौंधियाँ गयीं । उसके माथे से मैली साड़ी पीठ पर सरक गयी थी, उसे ठीक किया । एक ओर साड़ी खींच कर दाएँ पैर के नीचे दबा ली । नयी दुल्हिन की तरह जैसे अपने एक-एक अंग को लुका कर रखना चाहती हो।

काकी ने गोकुल बाबू को देखा तो जान में जान आयी ।

"खड़ी क्यों हो ? बैठने के लिए कुछ पीढ़ा-वीढ़ा लाओ ।" काकी ने रमबसिआ को इशारा किया ।

"रहने दो, मैं अभी चला जाऊँगा," गोकुल बाबू ने ऊपर के मन से मना किया । किन्तु रमबसिआ तब तक वहाँ से चली गयी ।

"क्यों रे बटरी ! सुनता हूँ तू ठीक से खा-पी नहीं रही है । बिल्कुल मरने पर उतारू हो गयी है क्या ?"

बटरी चुपचाप सिर झुकाये, नाखून से धरती पर चिचिहरी खींचती रही ।

रमबसिआ ने मचिया लाकर गोकुल बाबू के पीछे रख दी, "बैठो बाबू", और बगल से होती हुई बटरी के पास जा कर बैठ गयी । उसने एक हाथ से बटरी की ठुड्डी पकड कर ऊपर उठा दिया, "कुछ सुनती है कि बाबू क्या कह रहे हैं ?" बुझी आँखों से बटरी ने गोकुल बाबू की ओर देखा और जैसे ही रमबसिआ का हाथ ठुड्डी से गिरा, बटरी की बुझी आँखें भी गिर गयीं ।

गोकुल बाबू का भारी शरीर मचिया पर बैठते हुए अँड़स गया । मचिया चरमरा के रह गई । "यह भूत-प्रेत का नकल छोड़ो । अपने शरीर पर ध्यान दो नहीं तो· "

गोकुल बाबू की आँखें बटरी के माथे की खींची हुई तमाम रेखाओं से होती हुई उसकी निरीह आँखों से एक बार फिर टकरा गयी थी ।

गोकुल बाबू के लिए उन आँखों का ताप झेल पाना कठिन था । उनसे वहाँ बैठा नहीं गया । लगा जैसे बाढ़ का पानी उनका पीछा कर रहा है । चलते-चलते उन्होंने बटरी को ढेर-सी बातें सुना दी कि यदि उसकी यही रहन रही तो कोई भी कुछ नहीं कर सकेगा । भूत-प्रेत का ढोंग उनसे नहीं देखा जाता । धरती पर गोंजने से क्या लाभ ? यह गन्दी आदत है । गोकुल बाबू के सामने वे तमाम टेढ़ी-मेढ़ी लकीरें उगती हैं, दीवार पर उनका नाम लिख जाती है और उन्हें लगता है कि वे आँखें भी यहीं आस-पास कहीं से उन्हें घूर रहीं है ।

रमबसिआ को उन्होंने समझा दिया था कि किसी भी चीज की जरुरत हो तो उनके घर से मँगवा ले । खाने-पीने का कोई कष्ट नहीं होना चाहिए । जब उसका दुआर लाँघ कर गोकुल बाबू कोमल के पिछवाड़े लीक पर पहुँचे थे तो बटरी का बाप जगना भी मिल गया था । उसे भी दो चार कड़ी बातें गोकुल बाबू ने सुना दी थीं—"तुम लोग उसे मार डालोगे । जंतर-मंतर से कुछ नहीं होगा । किसी

डॉक्टर को दिखाओ । जो खर्चा होगा मैं दूँगा ।''

जगना घिघियाने लगा था–''मालिक ! आप ही लोगों का सहारा है । डॉक्टर-वैद्य को भी दिखा चुका हूँ । कोई फायदा नही । रोग नही है मालिक ! यह कोई दैवी फेर पड गया है । मैं तो सब तरह से तैयार हूँ । जैसे भी वह ठीक हो जाती ।''

''नींद नहीं आ रही है ? सिर में तेल मिला दूँ ?'' गोकुल बाबू की पत्नी ने उन्हे बार-बार पलकें झपकाते देख कर पूछा ।

''नहीं, चिराग बुझा दो ।'' गोकुल बाबू ने करवट बदल कर मुँह दूसरी ओर फेर लिया ।

''सिर दुख रहा है ?''

''नहीं, चिराग बुझा कर सो जाओ ।'' गोकुल बाबू की आवाज में एक झुँझलाहट है । गीता ने झाँपते हुए चिराग बुझा दिया और उनके मना करने पर भी तेल लेकर सिराहने बैठ गयी । गोकुल बाबू की यही आदत गीता को अच्छी नहीं लगती । न जाने क्या-क्या सोचते हैं, जब देखो मुँह लटका लिया, आखिर कोई कुछ कहे तभी तो पता लगे कि क्या बात है ।

गोकुल बाबू की समझ में नही आ रहा था कि गीता से क्या कहें । चार साल पहले यही गीता जब पत्नी बनकर आई तो उसे भी बटरी पर संदेह हुआ था। घर की लौंडी का इतना दुलार । अपनी बहनो के साथ बिठा कर पढ़ाना-लिखाना, उसकी हर फरमाइश पूरी करना । गीता जल-भुन कर राख हो गई थी कि बटरी घर की लौडी नही, उसकी सौत है । गोकुल बाबू ने गीता की बातों को हँसी में टाल दिया था, ''थोड़े ही दिनों बाद समझ जाओगी ।'' और सचमुच थोड़े ही दिनों बाद गीता का सारा सदेह मिट गया था । गीता अपनी दोनों छोटी ननदों की तरह बटरी को भी दुलारने लगी थी । दिन भर बटरी गीता के साथ लगी रहती, भाभी-भाभी।

बटरी जब ससुराल जाने से पहले गीता से मिलने आई थी तो गीता की आँखों में बाढ़ उमड आई थी । बहुत तडके ही बटरी की बैलगाड़ी उसके घर के पिछवाड़े से हो कर गुजरी थी । बैलगाड़ी के छज्जे में बन्द बटरी को उसने जंगले से झॉक कर देखा था । बैलों के गले में बजते घुँघरुओं की आवाज तो पल भर सुनाई देकर बुझ गयी किन्तु बटरी की आवाज, उसकी विदाई के कई दिनों पहले से ही गाँव के घर-घर में कॉपती रही और बटरी के चले जाने के बाद भी गूँजती रही । उस दिन तो घर में किसी को भी खाना अच्छा नहीं लगा था । कुसुम और मधु दिन भर रोती रहीं । गोकुल बाबू पहले ही घर छोड़कर किसी दूसरे गाँव को निकल गये थे ।

''अब रहने दो ।'' गोकुल बाबू ने अपना सिर तकिए पर ऊपर की ओर खींच लिया ।

''तेल तो सूख जाने दो ।'' गीता अपना हाथ वैसे ही चलाती रही ।

गोकुल बाबू को लगता जैसे गीता की कलाई की झुनझुनाती चूड़ियाँ भी रो रही हों।

बटरी ने भी उनके सिर में तेल मिलाया है । पैर दबाया है । पैर की उँगलियाँ खींच कर चटकायी हैं ।

याद, जैसे गोकुल बाबू के सिरहाने उनके नरम बालों में अपनी लम्बी उँगलियों को फँसायें, एक परिचित गंध लिए बैठ गयी है । वह उसे परे हटाना चाहते हैं । किन्तु वह हटती नहीं, लरिया कर और सटी आती है ।

बटरी चार-पाँच साल की रही होगी, जब उसकी माँ मरी थी । कमर में चार अंगुल चौड़ा चिरकुट लपेटे वह घर-घर घूमा करती थी । किसी ने दया की, अपना जूठन दे दिया और उसका नाम रख दिया—सखुआ की पटरी । किसी ने बहुत छोह किया तो फटे कपड़े दे दिये और उसका नाम बदल दिया—बटरी । किसी ने कुछ नहीं, केवल चिढ़ा दिया—बकरी । और इतने ही से वह पालतू, कनकटी कुतिया की तरह उनके घर की हो गयी । किन्तु यह बहुत पुरानी बात है। गोकुल बाबू भी उस समय आठ-दस साल के रहे होंगे । गोकुल बाबू गाँव से एक मील पढ़ने जाया करते थे । लौटते समय कभी-कभी बटरी रास्ते में मिल जाती तो दिन का बचा हुआ भूजा, जिसे वह घर लौटा कर लाते थे, रास्ते में ही उसे दे देते। छोटी बहन कुसुम बटरी से साल भर बड़ी है । मधु छोटी थी, बहुत छोटी । बटरी उसे अपनी गोद में उठा लेती थी । धीरे-धीरे बटरी घर में झाड़ू देने लगी, बर्तन माँजने लगी, कुसुम की छोड़ी हुई साड़ी पहनने लगी ।

एक कोने में रखे बकस पर बिल्ली कूद कर चढ़ गयी । वहाँ रखा हुआ लोटा-गिलास नीचे गिर गया । रात के सूने में इतनी आवाज भी बहुत लगी । गोकुल बाबू हड़बड़ा के उठ बैठे—"देखो तो गीता, क्या हुआ ?"

गीता ने अंधेरे में टटोल कर तकिये के नीचे से दियासलाई निकाली । बुझे चिराग को जला दिया । दालान में सोयी गोकुल की माँ भी खाँसती हुई दरवाजे पर चली आई—"क्या हुआ दुलहिन ?"

गीता कुछ उत्तर दे इसके पूर्व ही बिल्ली निकल भागी ।

"अम्मा जी, सब हेवान कर दिया ।"

गोकुल की माँ कमरे में अन्दर चली आयी । गोकुल बाबू फिर चारपाई पर पड़ गये थे । लोटे का पानी बक्से के ऊपर फैल गया था । शीशे का गिलास टूट कर कई टुकड़े हो गया था । पानी की एक टेढ़ी-मेढ़ी लकीर रेंगती हुई गोकुल की चारपाई के नीचे बह रही थी ।

गीता ने एक गंदे कपड़े से बक्से का पानी पोंछ दिया । गोकुल की माँ गिलास के टूटे टुकडे बटोरने लगी -"बहुत मुश्किल से किसी तरह निगोड़ी नींद आ रही थी वह भी गई । इन बिल्ले-बिल्लियों के मारे भर-नींद सोना मुहाल हो गया है । अब तक तो भजन सोखा चिघर रहा था । उसका पचरा बन्द हुआ तो इधर शुरू हो गया ।"

"अम्मा जी, इनकी तबियत ठीक नहीं है ।" गीता ने प्रसग बदल

दिया । उसे डर लग रहा था कि अम्मा का रोष कही उसकी ओर मुड गया तो सारा दोष उसी पर थोपा जाएगा ।' कुछ भी शऊर नहीं । अब इस घर मे एक भी शीशे का गिलास नहीं बचेगा । लापरवाही का नतीजा ठीक नहीं होता है ।'

"क्यों रे, क्या हो गया ?" माँ ने गिलास के टुकड़े वैसे ही छोड़ दिये । गोकुल के माथे पर हाथ रख कर देखा–"बुखार तो नहीं है ।"

"कुछ भी नहीं माँ । वैसे ही नींद नहीं आ रही है ।"

"रजाई में मुँह ढँककर सो जाओ । सब ठीक हो जायेगा। क्यों दुलहिन दूध दे दिया है या नहीं ?"

"दूध पी लिया है माँ !" गोकुल और गीता ने एक ही अनमिली आवाज में कहा ।

"मन बँहटिया कर सो जाओ । गाँव में रात-रात भर ओझाई-सोखाई होगी तो भला किसी को नींद आएगी ?" गोकुल की माँ ने रजाई खींच कर गोकुल के हाथ-पैर ठीक से ढाँक-तोप दिये और कमरे से बाहर निकल आयी । गीता भी उनके पीछे-पीछे लोटा लिए बाहर निकली । आँगन में पाइप से पानी भर लोटा उसने गोकुल की चारपाई के नीचे रख दिया और लोटे के ऊपर कटोरा रख कर ढँक दिया । भीतर से दरवाजे की सिटकनी बन्द की । उसके मन में भी बटरी को लेकर खलबली मची थी । उसे पता था कि गोकुल आज बटरी के घर गया था । वहाँ से लौट कर उसने बटरी के सम्बन्ध में एक बात भी किसी से नहीं कही । माँ ने पूछा तो डाँट दिया कि हमारे सामने किसी ने उसका नाम भी लिया तो ठीक नहीं होगा ? बहुत डरते-डरते गीता ने बात उघारी–"बटरी के घर गये थे न ?" "हाँ," गोकुल ने अपना मुँह रजाई से बाहर निकाल लिया ।

"अब कैसी है ?" गीता का साहस बढ़ा ।

"वैसे ही है ।" गोकुल ने छत घूरते हुए कहा ।

"उसकी बड़ी बहिन कहती थी कि यह सब कुछ पढ़ने-लिखने से हुआ है । उसके खानदान में कोई भी कभी नहीं पढ़ा-लिखा । अपढ़ जाति के लोगों का यही होता है ।" गीता ने चारपाई पर पाँव पसारते हुए अपनी बात समाप्त की ।

"तुम भी तो पढ़ी लिखी हो ।"

"हमारे और उसमें कोई अन्तर नहीं है क्या ?"

"क्या अन्तर है, बताओ ?"

"कुछ नहीं है तो उसी से विवाह किया होता ।" गीता को सब कुछ अच्छा लगता है किन्तु यही नहीं सहा जाता कि गोकुल उसे और बटरी को एक बराबर समझे । "चुप रहो ! जानती हो मैं उसे अपनी बहन की तरह समझता हूँ ।"

"ठीक है ! तो क्यों नहीं जैसे कुसुम दीदी के लिए इंजीनियर लड़का ढूँढ़ा, उसके लिए भी ढूँढ़ा होता ।"

"गीता ! चुप रहो, बहुत हुआ ।" गोकुल ने अपना मुँह रजाई से ढँक

लिया । गीता ने भी बात आगे नही बढायी किन्तु गीता की वाते देर तक उसे खरोंचती रहीं । बटरी को लेकर कितनी तरह की बातें लोग करते हे । उन्होंने कहॉ भूल की है ? बटरी को उन्होंने यदि थोडा बहुत पढा दिया तो कौन-सा अपराध कर दिया ? गॉव भर के लोग जानते हैं कि बटरी जैसी अच्छे चरित्र की लडकी पूरे गॉव में नही है । सारा गाँव मूर्ख है । गीता तो और भी कुछ नहीं समझती । उसे क्या पता आदर्श क्या होता है ? यदि मेरी जगह कोई और होता तो इस बटरी को रखेल बना लेता शायद तब प्रेत-बाधा जैसा कोई रोग भी नही होता । और न जाने कब गोकुल के विचारों का सिलसिला टूट कर तमाम बिखरी यादों से जुडता गया ।

''दालान में गोकुल बाबू बटरी को पीट रहे हैं । दूध से भरा शीशे का गिलास उसके हाथ से गिर कर चूरा हो गया है । उनके रोष का कारण एक और भी है । बटरी को उन्होंने निर्मल बाबू से हँस कर बातें करते हुए देखा है । वह बटरी का झोटा पकड़ कर खींच रहे हैं । वह चीख रही है । गीता पीछे से आकर उनकी बाँह पकड़ लेती है । वह बटरी को छोड़कर दालान से बाहर निकल जाते हैं । दरवाजे के सामने कुआँ है । वहीं एक किनारे हरी घास पर बैठे हुए वह पोदीना के पत्ते खोंट रहे हैं । आखिर वे बटरी से क्या चाहते हैं ? निर्मल बाबू का उद्देश्य साफ है, किन्तु वे ?

उनका पैर चींटी के भींटे पर पड़ जाता है । ढ़ेर सारी चीटियाँ उनके पैर के नीचे दब जाती हैं । वह पैर झाड़ते हुए हरी घास पर लौट आते हैं कम से कम यह तो नहीं चाहते थे जो हो रहा है ।

''हे चण्डी माँ ! आज तो बतावे के पडी। कौन कारन आ के पड़ि गइल ? भूत है ? पिशाच है ? बरम है ? मशान है ? बता नाहीं तो हमारे मुँह में करिक्खा लगि जाई ।''

भजन सोखा जमीन पर पेट के बल लेट कर सिसकारी भरने लगा । कभी-कभी जोर से अपने सिर को धरती पर पटकने लगता । '' हो देवी दुर्गा, कौरु-कमक्षा की भगवती, तरकुलहा की महरानी, कलकत्ता की काली माई । सातों बहन आके खड़ी हो जा ।''

गेहुअन साँप की तरह फुफकारते हुए भजन सोखा उठा और उकडू बैठ गया । उसकी गर्दन घूमने लगी–''माई ! सेवक पर भारी संकट आ के पड़ि गइल। बुजरो एतनी देर कहॉ लगा दी रे माई । कभी तो अवसर पर नहीं चूक हुई माई। कहाँ रथ विलम गइल रे माई । मुँह देखावल कठिन हो जाई रे माई । परतीत छूट जाई रे माई । चौरा खोदा जाई रे माई ।''

''नहीं, बेटा, नहीं !'' भजन की आवाज बदल गयी । उसकी साँस उल्टी चलने लगी । मुँह से फेचकुर छूटने लगा ।

देवी का रथ आ गया है । कौडा घेर कर बैठे हुए लोगों के कान खड़े हो गये । अब भजन के मुँह से जो भी वाणी निकलेगी देवी की होगी । 'जै हो काली माई ।' श्रद्धा से लोगो ने अपने सिर भजन की ओर झुका दिये । भजन अपने समूचे

शरीर को ऐठता हुआ खडा हो गया । उसने अपने हाथ मे बेत की छडी से चारो ओर की हवा को पीटा । हवा सिसक कर चुप हो गई ।"बोल ! कौन है तू ? कौन है ?" भजन बटरी के सामने बेंत डुलाता हुआ खड़ा हो गया ।

बटरी चुपचाप सिर झुकाये बैठी है । गाँव के ढेर सारे लोगों की आँखें उसकी ओर घूर रही है । इसका एहसास जब भी बटरी को होता है, वह लाज से और भी गड जाती है । भजन सोखा की ओर आँख उठाते हुए उसे डर लगता है। भजन सोखा से वह क्या कहे ? उसने देखा है बहुत से लोगो को जिनका भूत लौटकर अपना पता-ठिकाना बता जाता है । किन्तु उसका भूत क्यों नहीं लौटता ? उसकी जो इतनी सॉसत हो रही है, उसका भूत क्यों नहीं आ कर उसे उबार लेता ?

भजन सोखा के हाथ का बेंत सटाक-सटाक बटरी की पीठ पर बार-बार गिरता है ।

लोगों का विश्वास है कि चोट बटरी को नहीं, उसके भूत को लगती है। बटरी की पीठ पर केवल रेघारी खिंच आती है जैसे सारी पीठ पर गोजर रेंग गया हो ।

"बता चण्डालिनी," सटाक सटाक

बटरी के भूत को फालिज मार गया है । वह चुप है । सदा से चुप है । ससुराल के सोखा ने बटरी के भूत से यही सवाल पूछा था और उसी रात को बटरी ने अपने पति से पूछा था—"हमें क्या हुआ है ? हमारे ऊपर भूत-प्रेत नही चढ़ा है। हमें कुछ भी नहीं हुआ है । मैने बहुत-सी किताबें पढ़ी हैं । भूत-प्रेत बकवास है । दूर हटो । मेरे शरीर पर हाथ मत लगाओ ।" बटरी को घुन्ना के शरीर से एक दुर्गन्ध फूटती हुई लगी थी । उसने घुन्ना को झिटक दिया था । वह जोर से हँसने लगी थी ।

घुन्ना ने अपने मजबूत कड़े हाथों से बीती रातो की तरह ही उसे दबोच लिया था । उसकी आवाज बन्द करने के लिए घुन्ना ने उसके मुँह को अपने मजबूत हाथों से कस कर दबा लिया था "मैं तुम्हारा पति हूँ ।"

"तुम मेरे पति हो हीऽऽ हीऽऽ हीऽऽ ।"

बटरी की आवाज और हँसी भीतर दब गयी । केवल एक घरघराहट और लाचारी ही गहुओं से बाहर निकल पायी ।

"देखो तो तुम्हारे पीछे कौन खडा ?" छूटने पर बटरी ने साँस लेते हुए डरी आवाज में घुन्ना को पीछे की ओर दिखाया था । घुन्ना ने मुड़ कर पीछे देखा था ।

"तुम नहीं पहचानते हो ? नहीं बताऊँगी । हीऽऽ हीऽऽ हीऽऽ " बटरी ताली पीटकर हँसने लगी थी ।

घुन्ना ने फिर बटरी का मुँह बन्द कर दिया था । वह नहीं चाहता था कि यह आवाज इस घर के हर कोने में फैल कर उसके माँ-बाप के सुख-चैन को भी पी डाले । उसकी मॉ ने समझाया था कि इसके लक्षण ठीक नहीं है । जब तक इसका भूत नहीं उतर जाता, तुम उसके पास मत जाओ । पहले दो तीन दिनों तो

ससुराल के ओझा-सोखाओं ने भी झाड़-फूँक की किन्तु सब व्यर्थ । हार थक कर उसे मायके पहुँचा दिया गया ।

"हमसे बच कर कहाँ जाएगा ? मैं तीनों लोक को अपनी कानी उँगली पर नचाती हूँ । ब्रह्मा-विष्णु-महेश से पाँव चँतवाती हूँ । बोल, हमारे सेवकिन को छोडता है कि नहीं ? बोल," सटाक सटाक

बटरी की चीख रमबसिआ से नहीं सही गयी । वह घर में भीतर चली गयी। बटरी का बाप दूसरी ओर मुँह फेर कर कौड़ा की आग उटकेरने लगा । बटरी के भाई महाजन को बल्ली समझाने लगा, "भजन में यही तो गुन है कि ओझाई भी करता है और बकवाता भी है । आज बिन बकाये नहीं रहेगा । अभी तो इतना ही कर रहा है । यदि भूत घाघ हुआ तो जब तक तेल खौला कर उसके शरीर पर नहीं छोड़ा जाएगा, नहीं बकेगा ।"

"बोल ! नहीं बोलेगा ?" सटाक सटाक

बटरी की चीख भी उसके कंठ में धुटी जा रही थी ।

"बोल, जब तुम सुसराल जा रही थी तो दो कोस पार मुँडेरवा गाँव के पास बैलगाड़ी रुकी थी या नहीं ?" सटाक सटाक

बटरी ने सिसकी भरी "हाँ"

"वहीं गाड़ी के लीक से दस डग दक्षिण की ओर हटकर एक पीपल का पेड़ है । कहो हाँ ।" सटाक सटाक

"तुम उसी पीपल पर के जिन्न हो ।"

"हाँ"

"हमारे सेवक ने तुम्हारे स्थान पर सिर नहीं झुकाया । तुम्हारी पूजा नहीं की । इतनी ही चूक से तुमने मेरे सेवक को पकड लिया । कहो, हाँ ।" भजन का बेंत ऊपर को उठा किन्तु इसके पहले कि बटरी की पीठ पर गिरे बटरी ने कह दिया, "हाँ"

भजन ने बेंत एक किनारे फेंक दिया । किन्तु उसी कड़ी आवाज में पूछा—"बोल, अपने स्थान को जाता है कि नहीं ?"

"जाता हूँ"

"क्या पूजा लेगा ?" भजन की आवाज कुछ नरम हो गयी ।

"कुछ भी"

बटरी ने एक बार आँख उठा कर वहाँ जुटे हुए लोगों को देखा । कौड़ा घेर कर बैठे हुए एक-एक आदमी को पहचाना । उसे लगा गोकुल बाबू भीड़ में से उठकर जा रहे हैं । एक परछाई उसके सामने से पीछे हटती जा रही है । बटरी बिना किसी के सहारे खड़ी हो गयी । जैसे उस परछाई को पकड़ कर पूछना चाहती हो-"बोलो क्या पूजा लोगे ? मैंने तुम्हें सिर नहीं झुकाया, मैंने तुम्हारी सेवा नहीं, की, बोलो, क्या दूँ ? बोलो ।"

●

एक छोटा सा सुख

ताल गहरा नहीं था । बहुत होगा तो गले भर पानी रहा होगा । मैं तट पर बैठी अक्सर जब जल के दर्पण में अपना रूप देखती तो उसकी गहराई स्वतः नप जाती थी । उन दिनों दृष्टि ही कुछ ऐसी थी । कुछ के साथ बहुत कुछ देख लेती थी और आज ?

न जाने क्यों उस तालाब की याद आ रही है । सामने हरिदत्त बैठे हैं । उनकी बातों का सिलसिला है कि चुकता ही नहीं । गौरीश और हरिदत्त दोनों जब जोर का ठहाका लगाते हैं तो मैं भी हँस पडती हूँ बिना यह जाने कि आखिर ये दोनों हँस क्यों रहे हैं ? मैं ही क्यों हँस रही हूँ ? कई बार तो यहाँ से उठ चुकी। यह बार-बार उठना भी अच्छा नहीं लगता । न जाने हरिदत्त क्या सोचते होंगे ? जब भी किसी काम के बहाने यहाँ से उठती हूँ वह मेरी ओर कुछ अजीब आँखों से देखते हैं । चालीस वर्षो के बाद भी आँखों में वही चमक दिखाई पड़ती है जिसे झेलना बहुत कठिन लग रहा है ।

"माँ ! देखो चाचा भी यही कहते हैं ? आजकल आमदनी गाँवों में है । यहाँ तो गली-गली में डॉक्टर हैं । इतनी तगड़ी प्रतिस्पर्द्धा है कि थोड़ी पूँजी के साथ यहाँ व्यक्तिगत अस्पताल चला पाना असम्भव है ।"

गौरीश मेरी ओर देखता है । उसे पता है कि मैं क्या उत्तर दूँगी । कितनी बार यही समस्या उसने रखी है जैसे धन अर्जित कर लेना ही जीवन का परम लक्ष्य हो । है भी । किन्तु इसके अतिरिक्त भी तो कुछ चाहिए ।

"देवेन इन्जीनियर होकर लखनऊ चला गया । मुरली जयपुर विश्वविद्यालय मे प्राध्यापक नियुक्त हुआ तो वह भी अपनी बहू के साथ यहाँ से विदा हो गया । अकेली मैं यहाँ कैसे रहूँगी ? पहले परीक्षा तो पास हो ले फिर देखा जाएगा ।" मैं इस बात को टालना चाहती हूँ ।

"पास तो हो ही जायेगा । क्यों गौरीश प्रश्न-पत्र कैसे हुए हैं ?" हरिदत्त किंचित गंभीर होकर मुस्कराते हैं जैसे अपनी भूल सुधार रहे हों । उन्हें पहले यही पूछना चाहिए था । व्यतिक्रम हो गया ।

"सब ठीक हुआ है चाचा ! मौखिक-परीक्षा में डर है । डॉ. बागची बहुत चापलूसी पसन्द आदमी हैं । मुझसे कुछ असन्तुष्ट हैं । पता नहीं क्या करें ?"

"हूँ, सब जगह यही हाल है ।" हरिदत्त उदास हो जाते हैं । मेज पर पडे अपने चश्मे को उठाकर कमानी के दोनो सिरों को एक-दूसरे से जोडते हैं। इतनी सी आवाज भी बहुत लगती है ।

"फेल तो उसका फॉदर भी नहीं कर सकता चाचा ।" गौरीश उल्लास से उछलकर कुर्सी मे तन जाता है । "आज दस तारीख है । पन्दह तक तो हर दशा में परीक्षाफल घोषित हो जायेगा ।"

हरिदत्त मुस्कराते हैं तो फिर उस ताल की मछलियाँ पानी की सतह पर उग आती हैं । मैं देखती हूँ । किनारे से एक छोटा कंकड उठाकर जल मे फेंक देती हूँ । एक जल-वृत्त की ध्वनि अपनी परिधि में सिमटती हुई टूट रही है । किनारे के छितौन के पेड़ से कोई पक्षी निकलता है ।

'ताल ! ताल ! कित्ता पानी ?'

'घुटने भर ।'

'नहीं ।'

'जाँघ भर ।'

'नहीं ।'

'गले भर ।'

'नहीं ।'

'तो कित्ता ?'

'मैं क्या जानूँ ?'

"आत्म-विश्वास बहुत बडी चीज है ।" हरिदत्त की आँखें नीचे की ओर झुकी हैं । एक-एक शब्द बोलते हुए जैसे उन्हें बहुत श्रम करना पड़ रहा हो । लगता है मुझे ही सुना रहे हैं हरिदत्त । मुझसे पुराना हिसाब माँग रहे हैं ।

"देखिये क्या होता है ? अन्तिम वर्ष है । मैं तो ईश्वर से रात-दिन प्रार्थना करती हूँ ।" इसी की चिन्ता है । देवेन और मुरली तो भगवान की दया से ऊँचे पद पर पहुँच गए । यह भी डॉक्टर हो जाए तो मेरा उत्तरदायित्व समाप्त हो जाये। चुपचाप राम-भजन करती । राम-भजन की बात करते हुए हँस पड़ती हूँ और हँसते हुए लगता है कि बाहर की ओर ऊँचे उठे हुए बूढ़े दाँत हरिदत्त को बहुत भद्दे लग रहे हैं ।

"सब हो जाएगा ।" हरिदत्त अपना एक पाँव उठाकर कुर्सी पर रख लेते हैं । मुरली और देवेन को तो कभी देखा ही नहीं पता नहीं कभी देख भी पाऊँ या नहीं । चलो तुम्हें देख लिया बेटे, तो समझता हूँ सबको देख लिया । हरिदत्त गौरीश के पीठ को थपथपाते हैं ।

कैसा तो हो जाता मन । आँखों में अकारण कुछ खुजलाहट होने लगती है । माथे पर से साडी का पल्ला खिसक गया था, उसे ठीक करती हूँ । हाँ, मुरली तो बिल्कुल इसी की तरह है । देवेन कुछ अधिक साँवला है । कद में भी वह दोनों भाइयों से बड़ा है । ठीक अपने पिता की तरह है । इतना भी केवल सोचकर रह

जाती हूँ । कह नही पाती ।

गौरीश मौन भाव से लान के शहतूत की ओर घूर रहा है । शायद उसे यह प्रसग रुचिकर नहीं लगता । हो सकता है अभी पूछ पड़े, "माँ इस वर्ष शहतूत मे फल बहुत कम लगे ।" अथवा और कोई बात जिससे बात बदल जाए ।

"मैं सोचता था कि इतने दिनो बाद शायद तुम भी नहीं पहचान पाओ ।"

हरिदत्त से आँखें अनायास टकरा जाती है तो कुछ संकुचित-सी हो जाती हूँ । कितनी बार तो हो गया हरिदत्त को एक ही संशय दुहराते । मानती हूँ संशय मेरा अपना भी था । चार दिनों पहले अकस्मात पत्र पाकर पल-भर के लिए एक ठहराव आ गया था । गौरीश ने पूछा था 'ये कौन हैं ?' तो परिचय देने के लिए भी सोचना पड़ा था । कितना सक्षिप्त-सा उत्तर था 'तुम नहीं जानते । तुम्हारे चाचा हैं ।' मैं भी सोचती थी कि इतने दिनों बाद कैसे पहचान सकूँगी ? कैसे पहचानेगे?

"इसीलिए तो मैं स्टेशन नहीं गया । जी में तो आया कि अपनी पीठ पर एक पोस्टर बाँध लें । मै अपनी माँ का बेटा हूँ । हरिदत्त चाचा को लेने आया हूँ, किन्तु नहीं गया ।" गौरीश और हरिदत्त के साथ मैं भी हँसती हूँ । गौरीश की बात अच्छी लगती है फिर भी उसे डाँटती हूँ, "तुम बहुत अशिष्ट होते जा रहे हो ।"

गौरीश की हँसी दब जाती है । वह लज्जित होकर दूसरी ओर देखने लगा है । हरिदत्त की प्रश्न भरी आँखें मेरी ओर उठती हैं किन्तु न जाने किस संकोच से बिना कुछ कहे वे घडी देखने लगते हैं ।

"क्या, क्या समय हुआ ?" अभिप्राय ही प्रश्न के समय के अनुकूल लगता है जैसे इस क्षण को मैने प्राण-दान दे दिया हो ।

"सात बज गये !" हरिदत्त सात पर इतना बल देते हैं कि लगता है अनजाने ही बहुत समय बीत गया । गौरीश चिहुँक जाता है, "सात बज गये ।" मुझे राजामण्डी एक मित्र के यहाँ जाना था । वह कुर्सी छोड़कर खड़ा हो जाता है।

"अभी आधे घण्टे के भीतर लौट आऊँगा ।" मुझे अपनी ओर घूरते हुए देखकर वह कह जाता है ।

"जल्दी लौटना," मेरे ही साथ हरिदत्त भी बोल उठते हैं । मैं चुप हो जाती हूँ । "मुझे नौ बजे वाली गाडी से जाना भी है ।"

"मैं तो कहता हूँ चाचा अभी दो-चार दिन रुकिए । कल आपको सीकरी घुमा लाऊँ ।" गौरीश बरामदे में पहुँच कर मुड़ जाता है और इस ढंग से देखता है जैसे हरिदत्त को उसकी बात मान लेनी चाहिए ।"

"फिर कभी आऊँगा बेटा ! काम ही कुछ ऐसा है कि कल शाम तक हर हालत मे वहाँ पहुँच जाना चाहिए ।"

गौरीश अपने कमरे मे चला गया । मन में आता है मैं भी यहाँ से उठकर उसके पीछे चली जाऊँ । अकेले हरिदत्त के पास बैठना न जाने क्यों कुछ भारी-सा लगता है ।

अपने बसेरे की ओर लौटते हुए पक्षियों का झुण्ड सिर पर से होकर

गुजरता है तो लगता है सचमुच साँझ हो गई । मुझे भी लौटना चाहिए । ताल में खिले कमल की पंखुड़ियाँ सिमटने लगी हैं । अब तक नहीं आया तो अब क्या आएगा ? मन उदास हो जाता है । मैं ताल के जल पर छितौन की एक टहनी से उसका नाम लिखती हूँ । शायद इस बीच आ जाए । एक बार उसका नाम लिख चुकी नहीं आया। गौरीश साईकिल उतार रहा है । "अच्छा चाचा ! अभी आ रहा हूँ ।" दूसरी बार-पीछे मुड़कर देखती हूँ, वह नहीं आया। गौरीश फाटक बन्द करके जा रहा है । मैं अन्तिम बार उसका नाम लिखती हूँ-

"और कहो क्या समाचार हैं ?" हरिदत्त पूछते हैं जैसे अब तक यही सोच रहे हो कि 'क्या पूछूँ ?' समाचार-पत्र एक पर्दे की तरह उनकी आँखों के सामने टँग जाता है ।

"सब ठीक ही है ।" चाहती हूँ हरिदत्त कुछ और पूछें किन्तु वे समाचार-पत्र पर अपनी दृष्टि गड़ाए चुप हैं । मुझे अपनी उपस्थिति व्यर्थ लगने लगी है । झुँझलाहट होती है इस आतिथ्य पर । आखिर चुप ही रहना था तो आये ही क्यों ? चालीस वर्षों का अन्तर नहीं पट सकता इसे जानते हुए भी एक पुल बन जाने की क्षीण आशा क्यों इस तरह कभी-कभी भभक उठती है । जिसके बुझते ही मन दुःखी हो जाता है ?

"एक दिन और रुक जाइए न । कल नहीं पहुँचने से क्या काम नहीं चलेगा ?"

"फिर कभी आऊँगा । अब तो आऊँगा ही ।" समाचार-पत्र उन्होंने बाएँ गाल से सटा लिया है । लगता है जैसे पर्दे की ओट से झाँक रहे हो । बार-बार का आग्रह और हर बार की उनकी अस्वीकृति से मन कुंठित हो जाता है । सोचती हूँ अब नहीं कहूँगी । "वर्षों तो रामनगर भी नहीं गया । इधर छुट्टी मिली है तो सोचता हूँ वहाँ भी घूम आऊँ ।"

वे रामनगर की चर्चा शायद मेरे कुंठित मन को शान्त करने के लिए चलाते हैं । शायद मेरी परीक्षा ले रहे हों । मेरी स्मृति को टटोल रहे हों । "कितने दिनों से नहीं गए ?"

मैं प्रयत्न करती हूँ कि वे मेरे मन का विकार मेरी आकृति की रेखाओं से न पढ़ सकें ।

"इधर सात-आठ वर्ष तो बीत ही गए होंगे । पद्मा के विवाह में गया था। तब से तो समय ही नहीं मिला ।" हरिदत्त समाचार-पत्र को मेज पर रख देते हैं। अपनी कुर्सी को पीठ से दबाकर पीछे की ओर झुकते हैं और अपनी आँखें ऊपर आसमान की ओर टिका लेते हैं । मैं उनकी ओर देखती हूँ तो लगता है अब तक मात्र उनकी उपस्थिति का एहसास भर था, देख उन्हें अभी रही हूँ, बिल्कुल अभी। चालीस वर्ष पहले के हरिदत्त और आज के हरिदत्त में कोई अन्तर नहीं । होठ उतने ही सुर्ख हैं । दोनों ओर बाहर को निकले हुए गालों में एक भी झुर्री नहीं पड़ी है। आँखों में वही चमक है । चश्मा तो बहुत पहले भी लगाते थे । हाँ बात करते हुए

ढँकी ऑखो को खोल लिया करते थे ।

"सब लोग मजे में तो हैं ?" मैं पूछती हूँ तो भूल जाती हूँ कि सात-आठ वर्षों पूर्व की स्थिति को दृष्टा की स्थिति क्या जाने ?

हरिदत्त मेरी भूल समझकर भी सह लेते हे । "हाँ अब तो सुना है कि रामनगर का रूप ही बदल गया। देवीपुर में कोई नया बाजार आबाद हुआ है । वडी-बडी दुकानें, चौड़ी सड़कें । चार-चार सिनेमा घर । अब वह कोई छोटा कस्बा नहीं रह गया ।"

यह सब कुछ स्वागत-भाषण सा हरिदत्त दे जाते हैं । कुर्सी को एक झटके से आगे की ओर दबा लेते है । "अब तो सब कुछ बदल गया है । वहाँ जाने पर शायद कोई पहचान भी नहीं सके । आश्चर्य होता है तुमने मुझ बूढ़े को कैसे पहचान लिया ।" हरिदत्त मुस्कराते हैं तो लगता है विष पी रहे हों ।

'नहीं यह दुर्बलता होगी । निग्रह तो रखना होगा ।' मैं अपने मन को समझाती हूँ । 'इस अवस्था को पहुँच कर यों खुल पड़ना निरी मूर्खता होगी ।'

हरिदत्त चुप हो गए हैं । उनकी आकृति कुछ धूमिल हो गई जैसे अभी-अभी कोई बहुत बड़ा तूफान चारों ओर से उन पर धूल बरसा गया हो । बरामदे का बल्ब जला दूँ । मैं कुर्सी छोड़कर उठती हूँ और बरामदे का ही नहीं भीतर घर मे भी बल्ब जला देती हूँ । लॉन पर रोशनी की हल्की परछाई पड़ने लगी है । बरामदे में खडी पल भर को सोचती हूँ कि उनके पास जाऊँ भी या नहीं । सब्जी दिन में ही बना ली थी । पूड़ियाँ छाननी हैं ।

"गौरीश अभी तक नहीं आया ।" मैं कुछ झुंझलाहट व्यक्त करती हूँ ।

"आता होगा, अभी-अभी तो गया है ।" हरिदत्त की आवाज में इतना विश्वास झलकता है जैसे मुझसे अधिक गौरीश को वही जानते हैं । उनकी आँखे मेरी ओर मुड़ती हैं जिसका अर्थ मैं समझ नहीं पाती । पता नहीं वे क्या चाहते हैं। संदेह भी होता है कहीं ऐसा तो नहीं कि मैं उनके पास बैठकर भी उन्हें क्लेश ही देती हूँ ।

"मैं तब तक कुछ पूड़ियाँ तल ले रही हूँ, क्यों ?" अनुमति लेने की भी आवश्यकता क्या थी ? किन्तु मांगती हूँ ।

"जैसा चाहो । मेरी तबियत तो कुछ भी खाने को नहीं हो रही है ।" हरिदत्त अपना पेट सहलाते हुए मुस्कराते हैं ।

"कुछ तो खाना ही पड़ेगा ।" मैं बिना उनके उत्तर की प्रतीक्षा किए चौके में चली आती हूँ । गंगादेई आटा गूँथकर रख गई है । अँगीठी सुलगाने में देर लगेगी । चूल्हा जला लूँ । कडाही, कलछुल और चकला सहेज कर बैठ जाती हूँ। लगता है आटा कुछ अधिक हो गया है । यह भी ठीक है । कुछ पूडियाँ बाँध दूँगी साथ लेते जायेंगे । यात्रा भी तो बहुत लम्बी है । चूल्हे की लकडी ने आग पकड़ ली है । धधकती लपटों के ऊपर कड़ाही में खौलता हुआ घी जैसे तालाब का पानी खौल रहा है और कमल के फूल तैर रहे हों ।

"क्यों नही पूछ ही लूँ कि आखिर उस ताल को क्यों बेच दिया ? उस बगीचे को क्यों बेच दिया ? कितने धन की आवश्यकता थी ? उसे बेचकर हो गई तृप्ति ? पा ली मुझसे मुक्ति ?" लगता है वह ताल दौड रहा है । उसके भीतर का सारा उफन कर चारो ओर से मुझे घेर रहा है जिसके भीतर की मछलियाँ हँस रही है । सोने की मछलियों की चाँदनी हँसी का फुहार मुझे अपने में लपेट रहा है । एक श्वेत व वृद्धा की आकृति की सलवटे लहरो-सी टूट रही है । काल की सीमाओं पर पीछे की ओर चलती हुई उसका लक्ष्य बदल रहा है । ताल के किनारे खडी होकर पुरइन के पत्तों को बुलाती हैं ।

'ओ पुरइन के पात ! मैं विनती करती हूँ । आज मुझे अपने साथ वहाँ ले चल जहाँ मेरा प्रियतम गया है ।' पुरइन का पात बहते-बहते रुक जाता है । 'तुम बहुत भारी हो । मै भी तुम्हारे साथ डूब जाऊँगा । कमल से कहो ।'

'कमल ! ओ कमल ! तट पर आ जाओ । मैं हवा के साथ तुम्हारी गंध में बैठकर बहूँगी । मैं तुम्हें प्यार करूँगी । तुम्हारे साथ खिलूँगी । तुम्हारे साथ मुरझा जाऊँगी । मैं बहुत दुःखी हूँ आ जाओ ।' कमल का फूल हँस रहा है, 'झूठ ! तुमने मुझे कई बार तोडकर प्रियतम की बलि दी है । मेरी एक-एक पंखुड़ी को विलगाकर लहरों में बहा दिया है । अब अपने उसी प्रियतम को बुलाओ । मुझे चाहो आज भी तोड़ लो । मैं तुम्हें नहीं ले चल सकता । और सुनो, तुम्हें पता नहीं कि अब हम पराए हो चुके हैं । हम बिक चुके हैं । तुम हमें तोड़ भी नहीं सकती।'

एक पूडी जल गई । मैं उसे किनारे निकाल कर रखती हूँ । घी बहुत गरम हो गया है । आँच बहुत धीमी कर देती हूँ । कितनी तो गर्मी है इस चौके में। क्षण-भर को क्यों नहीं बाहर हो आऊँ । पता नहीं हरिदत्त क्या कर रहे हो । गौरीश भी अब तक नहीं आया । मैं कडाही नीचे रख देती हूँ । बरामदे में खड़ी हरिदत्त को देखती हूँ । कुर्सी में लुढ़का हुआ उनका शरीर इतना अचेत लग रहा है जैसे खो गए हों । "अभी गौरीश नहीं आया ?" मैं उनकी चेतना को टटोलती हूँ ।

"अभी तो नहीं ।" बिना अपनी आँखें खोले और मेरी ओर देखे हरिदत्त बोल जाते हैं, किसी भी प्रकार की चिहुँक उनके व्यवहार में नहीं लगती । लगता हे जैसे बहुत पहले ही उन्होंने जान लिया हो कि मैं बरामदे में खड़ी हूँ और यही प्रश्न करने जा रही हूँ ।

"बड़ा नालायक लडका है । इतनी देर हो गई और अब तक नहीं लौटा ।" गौरीश को कोसते हुए जैसे मैं स्वयं को कोस रही हूँ । चौका में आकर पुनः बैठती हूँ तो पश्चाताप होता है कि मैं क्यों हरिदत्त को देखने गई ? इस बीच सारी पूड़ियाँ हो गई होतीं । हरिदत्त तो सदा से तटस्थ है फिर मैं ही क्यों बार-बार उस तालाब में डूबूँ । एक किनारे मै भी खड़ी रहकर मात्र दृष्टा रह सकती हूँ ? टमाटर का थोड़ा सूप बना लूँ । अच्छा रहेगा । अभी गौरीश आता है तो दही मँगा लूँगी । यदि दोपहर को लस्सी नहीं बना ली होती तो बाजार से नहीं लाना पड़ता। अब तो पूड़ियाँ भी कम ही हैं । इतनी गर्मी, उफ !

बरामदे मे कोई साईकिल चढा रहा है । शायद गौरीश आ गया । हाँ वही है । "कुछ देर हो गई । ऐसा हुआ न कि जिस दोस्त के यहॉ मै गया था वह घर पर ही नहीं मिला । प्रतीक्षा करनी पडी ।"

"झूठा कहीं का ।" मैं जानती हूँ कहाँ से आ रहा है । इस बार मुरली छुट्टियो में घर आता है तो कहूँगी । यदि इस वर्ष नही तो अगले वर्ष । विवाह तो करना ही है । किसी दिन चलकर बात चलाऊँगी । मुझे क्या ? ऐसे लडकी अच्छी हं । यदि अच्छीं न भी होती तो गौरीश जो चाहता है वही करती । चाहना की अस्वीकृति कितना विषाक्त और कुठित जीवन बना देती है । काले-नाग द्वारा स्त्रावित विष प्रतिपल घुला-घुला कर मार डालता है ।

"क्यों चाचा आप भी शाकाहारी हैं ?" इतने पर्दो के पार पता नहीं लगता कि हरिदत्त पर इस प्रश्न का क्या प्रभाव पडा । हाँ वह तत्काल कुछ नहीं कहते । सम्भवतः चिन्तित हो गए होगे । मैं बैठी हुई ऑकती हूँ ।

"था तो शाकाहारी ही किन्तु अब नहीं हूँ ।" हरिदत्त की आवाज एक बहुत हल्के पदचाप की तरह सुनती हूँ । जहाँ स्पष्ट सुनाई नहीं पड़ता वहॉ अपनी ओर से जोड लेती हूँ । हरिदत्त की आकृति पर उभरती भावनाओं की कल्पना करती हूँ । इस अवसर पर अवश्य ही वे मुस्कराए होगे ।

"बात यह हुई कि मेरे कस्बे मे मेरा एक बगीचा था । उस बगीचे में एक ताल था । उस ताल में एक मछली थी राधा "

सारे शरीर मे भय की एक हल्की सिहरन दौड़ जाती है । बेटे के सामने मॉ की कहानी । जी मे आता है यहाँ से उठकर उनके पास चली जाऊॅ । उनके मुँह पर ऊँगली रख दूँ । यह सब कहने से क्या लाभ ?

पूड़ियाँ छन चुकी है । कडाही में रखा घी जल रहा था । थोड़ा सा चूक गई होती तो आग पकड़ लेती । जल्दी से कडाही उतारकर एक किनारे नीचे रख देती हूँ ।

" राधा के नाक में एक हीरे के नगों वाला सोने का बेसर था । एक दिन अचानक वह मर गई । न जाने कैसे ? क्यों ? हो सकता है उसने हीरे की कण चबा ली हो । हाँ, कुछ भी हो सकता है ।"

कुछ नहीं भूल सके हैं हरिदत्त । एक-एक बात उन्हें याद है। "नही ऐसी बात नहीं । एक ही वस्तु की प्रतिक्रिया सब पर समान नहीं पड़ती । हो सकता है कोई माँसाहारी उसकी मृत्यु के बाद शाकाहारी हो जाता किन्तु मेरे ऊपर उल्टा प्रभाव पड़ा । मुझे लगा कि मछली पालने की जीव न होकर भोजन की वस्तु है ?"

हरिदत्त हॅसते हैं और उनकी हँसी मेरे पास तक छिटकती हुई लुत्तियों की तरह आकर जल जाती है । पता नहीं गौरीश के किस प्रश्न के उत्तर में उन्होंने इतना कह डाला । "गौरीश !" मै चौके में बैठी हुई उसे पुकारती हूँ ।

"अभी आया ।"

धैर्य नहीं रहता । मैं बरामदे मे निकल आती हूँ । हरिदत्त शायद कुछ कहने जा रहे थे किन्तु मुझे देखकर चुप हो गये ।

"अभी पूड़ियाँ गरम हैं । भोजन करने के वाद फिर बातें करना ।" मेरी आवाज में कुछ अस्वाभाविकता आ गई है जिसे मै महसूस करती हुई नरम पड़ जाती हूँ ।

गौरीश कुर्सी छोडकर खडा हो जाता है । "चाचा ! आप भी हाथ-मुँह धो लीजिए ।" हरिदत्त भी कुर्सी छोड़ देते है । मै चौके से आकर थालियाँ लगाती हूँ। भूल गई दही के लिए गौरीश से कहा ही नहीं । "गौरीश ! सुनो बेटा ! चौराहे से दौड़कर पाव भर दही ले आ । हाँ उधर ही मत रह जाना । मैं थाली लगा रही हूँ ।" गौरीश चला जाता है । हरिदत्त हाथ-मुँह धो कर बैठक में आ गये हैं । मेज पर थालियाँ रखती हुई, उनसे दृष्टि मिल जाती है । उनकी आकृति पर पश्चाताप की उदासी कालिख की तरह जम गई है । मैं स्वयं अपने को निमित्त मानकर लज्जित होती हूँ ।

"क्यों, तुम भी बैठो न ?" हरिदत्त केवल दो थालियाँ देखकर आग्रह करते हैं ।

"मैं बाद में खा लूँगी । अभी मन नहीं होता ।" आग्रह का सुख मुझे पुलकित कर जाता है ।

मैं बरामदे में आकर खम्भे के सहारे खड़ी सड़क देख रही हूँ । दूर से ही गौरीश दिखाई पड़ता है तो घर में लौट जाती हूँ । "आ गया," बैठक से होकर हरिदत्त के पास से गुजरते हुए अकस्मात मुँह से निकलता है । चौके मे से दो कटोरे लाकर मेज पर रख देती हूँ । गौरीश के हाथ से दही लेकर दोनों कटोरों में भर देती हूँ । "आपने अभी शुरू नहीं किया ।" गौरीश कुर्सी पर बैठते हुए कहता है। "शुरू कीजिए ।" वह थाली खींचकर अपने आगे कर लेता है ।

"अच्छा नहीं लगता बैठो न ।" हरिदत्त पुनः मेरी ओर देखते हुए आग्रह करते हैं । छोटी-छोटी बातों पर दुःखी हो जाना उनका पुराना स्वभाव है । सहानुभूति होती है । मैं गौरीश से सटकर एक किनारे बैठ जाती हूँ तो लगता है इतने से ही प्रसन्न हो गये ।

"अब कब तक आइएगा ।" गौरीश पूडी तोड़ता है, तो थाली में कटोरे खनक उठते हैं ।

हरिदत्त तुरन्त कुछ नहीं कहते । मुँह में रखी पूड़ियों को निगलकर पानी पीते हैं और सामने घूरते हुए कहते हैं, "बहुत जल्दी आऊँगा ।" जैसे गौरीश नहीं सामने की दीवार से बातें कर रहे हों । उनकी दृष्टि के दाहिने-बाएँ होने मात्र से अनुमान लगाती हूँ कि वे मेरे किस चित्र को घूर रहे हैं । सब गौरीश के कारण से हुआ । उसी ने मेरे चित्रों को यहाँ लटका दिया। अपने यों प्रदर्शन से संकोच होता है ।

"आप तो कुछ खा ही नहीं रहे हैं ।" हरिदत्त का ध्यान मै तोडना चाहती हूँ।

"मैं तो बहुत पेटू हूँ चाचा ! देखता हूँ आपके साथ तो भूखे ही उठना

पड़ेगा ।'' गौरीश अपना हाथ थाली में ही रोक लेता है और मुस्कराता है ।

''मैं तुम्हारी तरह जवान नहीं हूँ बेटा । दाँत टूट गए । पाचन-शक्ति क्षीण हो गयी । शरीर में पुरानी शक्ति नहीं रही । भला मैं तुम्हारी बराबरी कैसे कर सकता हूँ । हाँ कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जिन पर अवस्था का प्रभाव ही नहीं पडता।''

हरिदत्त अन्तिम वाक्य के साथ मेरी ओर देखते हैं तो सन्देह होता है कि कहीं मुझे ही लक्षित करके यह व्यंग्य कर रहे हों ।

''और सब्जी लाऊँ ?'' हरिदत्त के कटोरे में सब्जी अभी भरी है । थाली में पूड़ियाँ भी हैं ।

''नहीं, मुझे कुछ नहीं चाहिए ।'' हरिदत्त बहुत कोमल ढंग से वर्जित करते हैं ।

''थोड़ी सी ला दो ।'' गौरीश अपना कटोरा मेरी ओर बढ़ा देता है । वहाँ से चलते हुए स्वतः मेरे डग तेज हो जाते हैं जैसे यहाँ से उड़कर ओट में हो जाना चाहती हूँ । यदि गौरीश ने सब्जी नहीं माँगी होती तो भी मैं वहाँ से किसी न किसी बहाने उठती । चौके में जाने से पूर्व अपने कमरे में जाती हूँ । शीशे के सामने क्षण भर खडी होकर हरिदत्त को अपनी ही आकृति में देखती हूँ । देखी नहीं जाती । सोचती हूँ उन्होंने ऐसा क्यों कहा ? काल, यदि उनके प्रति दयालु है तो इसका अर्थ यह तो नहीं कि वे मेरी हँसी उड़ाते । मैं बूढ़ी हो गई और वे

''माँ ! पूरियाँ भी लेती आना ।'' गौरीश की आवाज से चौंक जाती हूँ।

''मेरे पिताजी को चित्रों का बहुत शौक था ।'' बैठक की देहरी से ही गौरीश की आवाज सुनती हूँ । वह अपनी बाईं बाँह को कुर्सी की पीठ से टेक कर पीछे की दीवार पर टँगे चित्रो की ओर आंगुलि निर्देश कर रहा है । मुझे देखकर मुड़ जाता है ।

गौरीश की थाली में पूड़ियाँ रखने के पूर्व हरिदत्त से आग्रह करती हूँ । वे अपने हाथ से छतरी की तरह थाली को ढँक लेते हैं,''नहीं, जितना है वही खा लूँ बहुत है ।''

''एक तो लीजिए ही ।'' गौरीश भी मेरे साथ आग्रह करता है ।

''खराब करने से क्या लाभ ?'' हरिदत्त अभी तक थाली ढँके हुए हैं। लगता है सचमुच नहीं खा सकेंगे । मैं सारी पूड़ियाँ गौरीश की थाली में डाल देती हूँ ।

''स्वयं पिताजी ने बहुत से चित्र बनाए हैं । प्राकृतिक दृश्यों के कुछ चित्र तो बहुत ही सुन्दर हैं । वह बीच में जो चित्र देख रहे है न, उन्हीं का बनाया है।'' गौरीश की उँगली के साथ मेरी भी दृष्टि उधर उठकर झपक जाती है।

'ताल ! दीवार से लटकता हुआ ताल का शव'

ताल सूखकर गहरा नीला रंग बन गया । उसे चारों ओर से घेरकर खड़े पेड़ों का झुरमुट सरल और वक्र रेखाओं में बदल गया । सड़े हुए शव पर भिनकती

हुई मक्खियों की तरह ताल पर मंडराता पक्षियों का झुण्ड तूलिका के हल्के गहरे दबाव के व्यंजक चिन्ह मात्र रह गए ।

'ताल मर गया ।'

'पुरइन के पात ! ओ पुरइन के पात ! ताल मर गया । मेरे पास आओ मै अपने आँसुओं से सींचकर तुम्हें जिलाए रखूँगी ।'

'ओ कमल के फूल ! तू भी आओ । डरो नहीं । अब तुम्हें किसी प्रियतम की बलि नहीं चढ़नी पड़ेगी । मैं तुम्हें अपने हृदय में सजोकर रखूँगी ।'

'राधा ! तू भाग्यवती है जो ताल की मृत्यु से पहले ही चल बसी । ला अपनी नाक का सोने का बेसर मुझे दे दे । मैं उसे पहनूँगी ।'

"अब तो बहुत कम समय है अन्यथा मैं आपको अपना एलबम दिखाता । एक से एक बढ़कर चित्र हैं, देखिएगा तो ।"

"बैठो न !" हरिदत्त गौरीश की बात को बीच में ही काट देते है ।

अपने को बहुत संयत रखती हूँ, किन्तु लगता है शरीर का एक-एक अंग शिथिल पड़ता जा रहा है । पाँव बुरी तरह कांप रहे हैं ।

"अभी आ रही हूँ ।" लगता है कोई अज्ञात शक्ति मेरे कमरे में बैठी मुझे पुकार रही है । मैं उधर खिंच रही हूँ ।

आलमारी में रखे हुए गौरीश के पिता का चित्र बेसुध-सी देर तक घूरती हूँ जैसे लगता है जी उठे हैं । मैं उस चित्र को छाती से लगाकर एक अद्भुत सुख में डूबती जा रही हूँ ।

"माँ

"माँ यहाँ आओ । चाचा जा रहे है ।"

गौरीश की आवाज सुनने को मन नहीं होता । यह सुख भी कोई बलात् मुझसे छीन रहा है ।

●

गोदने का रंग

कई दिनों तक मेरे कमरे की खिडकियाँ, दरवाजे बन्द रहे हैं । आज जब इन्हे खोला है तो दम घुटने वाली सडाँध से तबीयत भन्ना गई है । लगता है चार दिनो की खामोशी भी बहुत होती है । तभी तो तभी

कमरे में बड़ी सीलन है । एक ही खिड़की है जिसे सदा खुली रखने का अर्थ होता है चोरी । कोई भी खिडकी के रास्ते से मेरे कमरे को खाली कर सकता है ! कमरा किराये पर लेते समय मैंन यह सब कुछ नहीं सोचा था । चोर भी आगे की कुछ नही सोचता किन्तु मै चोर नहीं हूँ । मैंने इस घर की चोरी नहीं की है । हर महीने मकान मालिक को किराए का भुगतान कर देता हूँ । चोर के पास रुपया नहीं होता है । कितना अन्तर है मुझमे, चोर में और मकान मालिक में ।

मेरी चारपाई क्या है समझिये एक बड़ा सा टेबुल । जिस पर किताब, कपडे, बिस्तरा, सब कुछ रख लेता हूँ । लेटना हुआ तो इन्हें बाल-बच्चों की तरह एक किनारे सरका कर लेट जाता हूँ । हॉ चारपाई बाहर निकालनी पड़ती है तो कुछ कष्ट होता है । सारी बिखरी चीजों को इधर-उधर फिर बिखेरना पड़ता है ! कपडे अरगनी पर, किताबे आलमारी में और तब जाकर यह चारपाई कहीं बाहर निकल पाती है । जैसे यह चारपाई नहीं कोई बहुत ही जिम्मेदार बीबी हो जो कहीं बाहर जाने के पहले घर का सारा प्रबन्ध कर जाती है । बाल-बच्चों से लेकर खाने-पीने तक का प्रबन्ध । किन्तु मेरे पास कोई बीबी नहीं जिसे चारपाई कहकर पुकार सकूँ । चारपाई से बीबी की तुलना भी क्या ? यह सब तो कहने की बात है।

चुपचाप बिना बिस्तर के ही चारपाई पर लेट गया हूँ । मन कुछ उदास है । अजीब-सी बेचैनी लग रही है । इसीलिये घर नहीं जाता हूँ कि वहाँ से लौटकर कई दिनों तक घर की 'स्मृति' पीड़ा देती है । 'स्मृति' जैसे बिडला डालमिया की बेटी हो जिसकी ओर आँख उठाने का अर्थ होता है अपनी ऑखे फोड़ लेना । फिर गलत कह गया। आँखें उठाना और शादी करना हिन्दुस्तान के लिये ही नहीं सारी दुनियॉ के लिये दो अलग बातें हैं । खूबसूरत होकर किसी की ओर भी आँख उठाना बुरी बात नही, हॉ गरीब होकर किसी धनी-मनी की बेटी से शादी की बात सोचना बहुत बुरी बात है । बहुत बुरी बात—पाप ।

कितना नीचा है मेरे कमरे का आकाश । यदि अपनी चारपाई पर खड़ा

होकर अपनी बाँहों को ऊपर उठा दूँ तो उसे छू सकता हूँ । पता नहीं भगवान ऊपर रहता है या नीचे । चाहे जहॉ भी रहता हो यदि उसके पास भी कोई चारपाई होगी तो वह खड़ा होकर आसमान और धरती को चाहे जिसको भी छू लेता होगा। मेरे कमरे का आकाश गंदा है । जगह-जगह मकड़ी के जाले हैं, पेट के बल रेंगती हुई छिपकलियाँ हैं । मेरा कमरा छोटा है, इसीलिये, यह सब कुछ इसीलिये ।

खिड़की से बहुत सुस्त हवा आने लगी है । मेरी कोठरी अब खामोश नहीं है । उसका मुँह जो लगातार कई दिनो तक चुप रहने से बदबू करने लगा था, अब साफ हो गया है ऐसी बात नहीं कि मेरी कोठरी के मुँह से अब अगरबत्ती की गंध निकलने लगी । नहीं अब भी सामने की गदी नाली जहाँ पर बैठकर पड़ोसिन के बच्चे टट्टी किया करते हैं, वैसे ही है । मेरी कोठरी की एक दीवार से सटकर बाहर इस समय भी कोई पेशाब कर रहा होगा । हाँ वह सड़ाँध, वह दम-घोंटू दुर्गन्ध अब बिल्कुल नहीं है और यदि वह सब कुछ हो भी तो मैं अब बिल्कुल महसूस नहीं करता ।

हो सकता है कुछ दिनों बाद 'स्मृति' जिसे आज मैं बिडला और डालमिया की बेटी समझ रहा हूँ, कच्चे रंग की तरह घुल कर साफ हो जाये और मैं पहचान भी न सकूँ कि वह गुलाबी, गंधकी या बसन्ती रंग मेरे गंदे कपड़े पर कहाँ पड़े थे, किन्तु इस समय नहीं । इस समय तो बिल्कुल ही नहीं । इस समय तो मैं पहचान सकता हूँ कि कौन-सा रंग किसने छोड़ा था, किस रंग में कितना दुलार था, कितना प्यार था । धीरे-धीरे सारे रंग एक में मिलकर मिट सकते हैं किन्तु इस समय नहीं। इस समय तो बिल्कुल ही नहीं ।

और एक रंग गोदने का भी तो होता है । वह कैसे छूटेगा ? शायद वह कभी छूट ही न सके । झुनिया और उसकी ठुड्डी पर का गुदना—चटकी-भटकी कितना भला लगता था ।

पन्द्रह अगस्त की छुट्टी थी । सोलह को रविवार था । मैंने सोचा था कि सत्रह अगस्त को घर से लौट आऊँगा । एक दिन घर जाने के लिए चाहिए, एक दिन घर पर रुकने के लिये और एक दिन वहॉ से लौटने के लिये ।

इससे अधिक मैंने कुछ भी नहीं सोचा था और सोचता भी क्या ? अगस्त का महीना मुझे बिल्कुल नहीं अच्छा लगता । यदि बारिश होने लगी तो घर से बाहर निकलना मुश्किल । जब बारिश नहीं होती है तो कमरे में बैठना मुश्किल । यह भी कोई मौसम है ? इतनी गर्मी, इतनी उमस कि शरीर पर वस्त्र तक का भार नहीं सहा जाता । पसीने के मारे अपने ही शरीर से घिन लगती है । कभी-कभी तो सोचता हूँ कि यदि सचमुच ही यह शरीर वस्त्र होता तो इसे भी थोड़ी देर के लिए उतार कर अपनी बनिआइन की तरह किसी खूँटी से लटका देता । कुछ तो आराम मिलता । कौन जाने इसी उमस से ऊबकर अंग्रेजों ने हिन्दुस्तान छोड दिया, नहीं तो क्यों नहीं नवम्बर, दिसम्बर में हिन्दुस्तान छोडा, जबकि हिन्दुस्तान का मौसम खुशगवार हो जाता है

मैं उस दिन दस बजे तक अपने गाँव पहुँच गया था । नहीं मैं फिर गलत कह रहा हूँ उस दिन शनिवार था । भादों के कृष्ण पक्ष की सप्तमी थी । ऐसा इसलिए कह रहा हूँ कि यदि गाँव वालों के लिए भी अगस्त नाम का कोई महीना होता, पन्द्रह तारीख जैसी कोई तारीख होती तो क्या आज भी हलवाहे रोज की तरह अपने बैलों की जोडी आगे किये, कंधे पर हल रखकर घर छोड दिये होते ? गाँव भर की औरतें खुरपी-खाँची लिए खेतों में सोहनी करतीं । वहाँ कोई छुट्टी नहीं थी । कुछ भी विशेष नही था । सब कुछ वैसे ही, बिल्कुल वैसे ही ।

पिता जी घर पर नहीं थे । उत्तर पोखरा वाले खेत में सोहनी हो रही थी। पता लगा थोड़ी देर पहले ही वह गये हैं और अब मजदूरों के साथ लौटेंगे । मैं भी थोडी देर थकान मिटाकर वहीं चला गया । कई दिनों के बाद शहर लौट आया ।

"बैठो महेन्द्र ! अभी आज ही तो आया हूँ । कोई नई बात नहीं है । यहाँ की सुनाओ। मैं उदास हूँ ? नहीं तो नहीं तो आने-जाने की थकान समझो । छोड़ो भी इन बातों को । थोड़ी देर रुककर चलेंगे । अभी कौन जल्दी पड़ी है । इसे रख दो । डायरी किसी की नहीं पढ़नी चाहिए । अच्छा पढ़ो तुम्हारी मर्जी "

15 अगस्त रात्रि

घर से थोड़ी ही दूर पर वह खेत था जहाँ सोहनी हो रही थी । खेत के मेड़ पर एक शीशम का पेड है जो एक बूढ़े के कमर की तरह झुक गया है । धूप तेज थी । पेड़ सायेदार नहीं था । फिर भी उसकी परछाई एक झाड़ थी, सहारा, जैसा कि पत्नी के लिए पति । पिता जी वहीं बैठे हुए थे । उनका कहना है काम करने से कराना कठिन होता है । उस पर भी ये मजदूर । यदि थोड़ी देर के लिए भी इनको आजाद छोड़ दिया जाये तो ये काम करना बन्द कर देंगे । चुपचाप गपसप करेंगे । पिता जी के शब्दों में मजदूरों की बुरी हालत इसीलिए है कि वे बेईमानी करते हैं । काम से जी चुराते हैं । मालिक को धोखा देते हैं । हराम की कमाई में बरकत नहीं होती । हराम की कमाई कौन करता है ? खेत की मेड़ पर बैठा हुआ मालिक अथवा खुरपी चलाने वाला मजदूर ? मैंने पिताजी के चरण छूये और उनके पास बैठकर बातें करता रहा ।

मैं पिताजी की आँखे बचाकर सोहनी करने वाली औरतों की ओर देख लिया करता था । वे भी काम रोककर थोड़ी देर के लिए मुझे देखने लगी थीं । मैं उनसे थोड़ी ही दूर पर बैठा उनका खुसुर-फुसुर सुन रहा था। उनकी बातें साफ-साफ सुनाई नहीं पड़ती थीं । वे मेरे ही सम्बन्ध में बातें कर रही थीं । चाहता था कि पिता जी चले जाते और मैं उनसे घुल-मिलकर बातें करता ।

मैं आज भी उनको काकी ही कहता हूँ । मेरे पड़ोस में रहती है । उनका नाम क्या है मैं नहीं जानता । उनके बडे लडके का नाम मोती है । उसको मरे बहुत दिन हो गये । बुजरूग लोग आज भी उसे मोती की माँ कहकर पुकारते हैं ।

उसी ने पिता जी से कहा-"अब आप जाइये । बाबू बैठेगे ।" पता नहीं

यह कहने के लिए और लड़कियो ने उसे उकसाया था अथवा वह अपने से ही इस तरह कह पडी ।

मैंने कहा–"क्यो काम करने का मन नही है क्या ?" काकी झेप गई । दुबारा किसी ने कुछ नहीं कहा किन्तु पिता जी मुझे वहीं छोडकर चले गये ।

पिताजी के जाते ही प्रश्नो की एक बेतरतीब झड़ी चारो ओर से मुझ पर बरसती रही–"गॉव अच्छा नही लगता है क्या ?"

"घर-बार की याद नहीं आती ?"

"शादी कब करेगे ?"

"बूढ़े होने तक पढते ही रहियेगा ?"

"शहर की औरतों को छोड़कर भला यहाँ क्यों अच्छा लगे ।"

अन्तिम बात दशरथ की बीबी ने न जाने किस झोक मे कह दिया । वह बडी मुँह-फट्ट है । गॉव के पद से मैं उसे भौजी कहता हूॅ । मैं सबको कुछ न कुछ उत्तर देता रहा । यह क्रम देर तक चला । वे अपने काम मे जुट गयी । मैं चुपचाप मेड़ पर बैठा आसमान देख रहा था । नीचे आकाश में बिखरे बादलो के रंग-बिरंगे टुकडे लगा जैसे किसी धुनिआ ने नीली चादर पर कई रगो की रुई धुनकर गल्ला कर दी हो । मैं निरुद्देश्य बडी देर तक ऊपर देखता रहा ।

झुनिया घास की मुट्ठी पीछे फेंकती हुई मेरी ओर देख लेती थी । मेरी ऑखें भी न जाने किस अज्ञात कारण से बार-बार आसमान सें नीचे गिर जाती थी और झुनिया से टकरा जाती ।

मजदूरो की संख्या आठ थी । चार बूढ़ी औरते, एक आठ साल का लड़का, एक दस साल की लडकी, दो जवान लड़कियॉ । जवानी भी हिन्दुस्तान मे जल्दी आ जाती है और खास तौर पर लडकियो की । झुनिया और बसन्ती जिन्हें मै ही क्या सारा गॉव जवान समझता है, की उमर पन्द्रह-सोलह साल से अधिक नहीं होगी ।

झुनिया और बसन्ती के कपड़े पता नही कुछ साफ थे अथवा उनकी जवानी थी जो उनके कपडो की गन्दगी छिपाये हुए थी । मुझे लगता था उनके कपड़ों मे बदबू नही निकलती है । उनके शरीर स्वच्छ है निर्मल । बसन्ती के कम झुनिया के अधिक । झुनिया

उसने फिर मुड़कर मेरी ओर देखा ।

झुनिया जात की चमाइन है । उसका बाप गाँव के दूसरे टोले पर रहता है । मै झुनिया के बाप को जानता हूॅ । उसके भाइयों को जानता हूॅ । किन्तु झुनिया को आज ही जान रहा हूॅ । देखने में सुन्दर, बहुत सुन्दर । आँखें छोटी-छोटी, किन्तु कजरारी और बहुत ही चचल सचमुच खंजन की तरह । अधिक लम्बी नहीं। अधिक मोटी नहीं । बिल्कुल ऐसी जो आँखो में गड़ जाये । नाम भी कितना मीठा–झुनुनुनुन-झुनिया । शायद आज से पहले भी उसे कभी देखा हो किन्तु आज की तरह तो आज ही पहले कभी नहीं ।

"बाबू जी आ रहे हैं," एक फुसुफुसाहट रेंग गई । सबकी ऑखें बिल्कुल निकट पहुँचे हुए पिताजी पर पडी । मैं वहाँ से चला आया चुपचाप । कैसे कहूँ कि पता नहीं मेरा मन कितना वाचाल हो गया था । मैं मुड़कर पीछे देख लेता था । लगता था झुनिया भी मुझे देख रही हो ।

जैसे यह सारी बातें किसी रटी हुई स्पीच की तरह एक साँस मे लिख गया हूँ । इसके बाद क्या हुआ सोचता हूँ तो बारह बजे दिन से लेकर इस समय (अनुमानतः रात के ग्यारह बजे) तक की कोई भी बात लिखने लायक नहीं लगती।

बातें तो बहुत हुई थीं जैसे शिक्षा, राजनीति, दर्शन और घर गृहस्थी से सम्बन्धित, और

मिला भी बहुत लोगो से जैसे-पिता, माँ नहीं (वह अपने मायके थी) चाचा, चाची, भईया, भाभी, छोटे भाई, बड़ी बहिनें, छोटी बहिने, कुछ भतीजे, कुछ भानजे, गॉव के ऐसे ही तमाम लोग और

घटनायें भी बहुत हुई जैसे राम सुभग का बैल जोखन का खेत चरते हुए पकड़ा गया, महादेव खेत में बजड़ा काटते हुए पीटा गया, शिवदेवी की बहू और सोमारी की बीबी में बहुत बुरी तरह गाली-गलौज हुआ (शिवदेवी ने सोमारी के खेत का मेड काट लिया था) दो बैल लड़ गये, बकरी को भेड़िया पकड़ ले गया और

किन्तु रह-रह कर झुनिया की याद आ जाती है जो धान के खेत से शुरू होती है और धान के खेत मे ही हरे पौधो के बीच किसी छोटे पौधे की तरह खो जाती । मैं उसे खोजता हूँ । खोजते-खोजते उसके घर तक जाता हूँ किन्तु वह नहीं दिखाई देती है । कल जब फिर झुनिया अपनी खुरपी लिये आयेगी तो वह छोटा घास का पौधा नही रहेगा झुनिया रहेगी ।

यह तो मैं भूल गया था कि आज पन्द्रह अगस्त है । पन्द्रह अगस्त-एक राष्ट्रीय पर्व, 15 अगस्त-एक सीमा, 15 अगस्त-जिस पर बहुत सी कवितायें लिखी गई हैं, लिखी जा रही हैं, 15 अगस्त-जिस तारीख को सरकार बहुत रुपया खर्च करती है, 15 अगस्त-जिस दिन मुझे ऐसी डायरी नहीं लिखनी चाहिये ।

सोने और मरने के पहले नैतिक हो जाना चाहिये—ज्ञानी । इसीलिए सोने के पूर्व में नित्य गीता का पाठ करता हूँ । थोड़ी देर पढ़ने से ही नींद आ जाती है। (आज की बात नहीं जानता) और आज भी इस नित्य क्रिया में व्यवधान नहीं आयेगा। जब गीता पढ़कर सोऊँगा तो बुरे सपने नहीं आयेंगे और बस इसलिये बस

"तो आप इसीलिए घर रुक गये । अब समझा कि आप हमें क्यों नीति सिखा रहे हैं । मैं यह सब नहीं मानने को । इसमें बुरा मानने की क्या बात है । पढ़ने से क्या हो जाता है ? रुको भी "

भोर को चारपाई छोड़ते ही झुनिया की याद आई । पिता जी मजदूरों के चक्कर में घर छोड चुके थे । पिता जी को मजदूरों से शिकायत है । शायद वही

हर मालिक को होगी, चाहे वह खेत का हो अथवा चन्द किताबों का या जैसा हो–मिल का मालिक, देश का मालिक और सारी दुनिया का मालिक । वे कहते हैं कि मजदूरों के पीछे-पीछे नही लगे रहो तो वह घर से जल्दी निकलते ही नहीं । इन सभी का कुछ विश्वास नहीं किया जा सकता । पहुँचने पर कह देंगे हम आप ही के खेत पर चलेंगे और जब आना होगा तो दूसरे के काम में निकल जायेंगे । ''मैं मजदूरों का हिमायती नहीं, अपने योग्य पिता का अयोग्य ही सही पुत्र हूँ । जिसे अपने पिता के समक्ष इन मजदूरों को क्या भगवान को भी तुच्छ समझना चाहिए । यद्यपि भक्त प्रहलाद ने ऐसा नहीं किया और इसीलिये मेरे पिता की नजरों में या हर मालिक के पुत्र या पिता की नजर में वह राजा ययाति के पुत्र--भक्तों के समान नहीं, बिल्कुल नहीं ।''

राजा ययाति के साथ ही उनकी कहानी याद आती है–''एक था राजा । वह वृद्ध हो चला । उसने अपने पुत्र से जवानी मांगी । इसलिये कि ''

एक है आज की सरकार जो

राजा ययाति ने पुत्र के सामने जो नीति रखी थी सरकार की नीति भी ऐसी ही होती है । जब कोई कभी सरकार बार–बार अपनी जनता को देश–भक्ति की कुनैन खिलाने लगे तो समझ लेना चाहिए कि डॉक्टर निकम्मा है जो कुनैन खिलाकर कमजोरी दूर करना चाहता है । क्या जनता के सेवक को जनता से कहना पडता है, प्रचार करना पड़ता है कि मैं तुम्हारा सेवक हूँ ?

जो हो झुनिया किसी राजा की बेटी नहीं । मुझे राजा नहीं कहना चाहिये। आजकल तो मिनिस्टर की बेटी ही सबसे बड़ी बेटी है । किन्तु लोग मिनिस्टर को राजा नहीं कहते । न जाने क्यों ?

आज सबेरे खेत में पहुँचा । किन्तु पिता जी बड़ी देर तक साथ बने रहे। इस बीच झुनिया की ओर घूरते डर लगता था । उसके पीठ पर पीछे से माटी का रोरा फेंकने को कई बार सोचा किन्तु नहीं चला सका । वह भी पीछे मुड़कर कल की तरह नहीं देखती थी । मैं समझता था क्यों ? मैं सब कुछ समझ रहा था ।

झुनिया की साड़ी वही कल वाली थी । साड़ी क्या पाँच गज की मारकीन जिस पर जगह–जगह लाल रंग के छींट, जो फागुन से लगातार देहाती धोबी के धुलते रहने पर भी न मिटे न आज तक छुटे थे ।

आसमान बिल्कुल साफ था । सूरज अभी शीशम के कूबड़ से भी नीचे था। मुश्किल से 9 बजे होंगे किन्तु धूप बड़ी तेज थी । धान के हरे–हरे पौधे जो भोर को सुकुमार बच्चों की तरह किलकारियाँ मार रहे थे लगता था जैसे इनकी माँ का स्तन ही सूख गया हो और वे बुरी तरह दूध के लिए रोने लगे हों । खड़े पत्ते झुक गये थे, उदास, चिन्तित । अपने हाथ पर माथा रखे मैंने कई बार ऊपर आसमान देखने को सर उठाया किन्तु आँखें चकाचौंध हो जाती । आस–पास के हरे पौधे भी धुँधले दिखाई देने लगे । आकाश का सूर्य नंगा होने से मुझे अपनी ओर देखने से रोक रहा है । कौन जाने कितनी आग, कितना दर्द उसने अपने भीतर

छिपाकर रख छोडा है । कौन जाने ?

पिता जी ने मजदूरों को उकसाया, जरा जल्दी-जल्दी हाथ चलाओ । इस धूप में निकाली गई घास सूख जायेगी । और ये धान के पौधे अपनी छाती पर विजातीय बोझ से मुक्त होकर स्वस्थ साँस लेगे । पानी पीकर बढ़ेंगे, समय पाकर फूलेंगे, गदरायेंगे, पकेंगे और

ऐसा पिता जी ने नहीं कहा किन्तु मैं सोचता रहा । बिल्कुल ऐसे ही । जैसे मेरा खेत ही मेरा राष्ट्र हो और धान के पौधों के रक्त पर पलने वाली तमाम घासें शोषक हों । ऐसे ही हर राष्ट्र में खेत होंगे । ऐसे ही हर खेत के पौधे होंगे। ऐसे ही हर पौधों की छाती पर जली सिगरेट के धुँये की काई की तरह घास उगी होगी । बिल्कुल ऐसे ही ।

पिता जी ने अब तक मुँह नहीं धोया था । वे मुझे कुछ नसीहतें देकर घर चले गये । कुछ ऐसा लगा कि उमस कम हो गई । सूरज ने वस्त्र पहन लिया । हवा चंचल हो गई ।

मजदूरों में खुसुर-फुसुर शुरू हो गई । झुनिया को छोड़कर बाकी सबने मुझसे भी बातें की । झुनिया सिर्फ कनखियों से देखकर मुस्करा देती थी । मुझे उसका इस तरह हँसना बहुत अच्छा लगता था । एक अजीब तरह की गुदगुदी होती थी और मैं सोचता था काश ! एक एक्सीडेन्ट हो जाता (एक्सीडेन्ट ही घटना नहीं)।

झुनिया कुछ गुनगुना रही थी । यह बात सारा गाँव जानता है कि मैं औरतों के गीतों का मजाक उड़ाता हूँ । मुझे 'सोने की थारी में जेबना परोसना, लवंग-लाची का बीड़ा, चन्दन के पीढ़े पर बैठना,' झूठा लगता है । मैं यह जानता हूँ कि ये गाने वालियों के रटे हुये गीत उनकी जिन्दगी से बहुत दूर हैं किन्तु झुनिया का गुनगुनाना मुझे बहुत अच्छा लगा । मैंने उसी को तो नहीं, सबसे कहा कि तुम लोग क्यों नहीं गाती हो । आस-पास के और खेतों के मजदूर गाये जा रहे हैं । मैं जानता था कि ये अब तक इसलिए चुप थे कि इन्हें पिता जी से डर लगता है और इसीलिए मैंने उन्हें गाने के लिये उकसाया । इसी बीच झुनिया मुझे छिप-छिपकर देखती और मुस्कराती रही ।

पता नहीं कितने गीत इन मजदूरिनों ने गाये । नहीं तो मैं गिनकर लिख लेता । पहला गीत झुनिया ने शुरू किया था, दूसरा बसन्ती ने, तीसरा बुढ़िया काकी ने और चौथा फिर झुनिया ने । बस केवल चार गीत । गीत नहीं एक कहानी थी—दो सखियाँ आपस में बात कर रही हैं । एक सखी दूसरी सखी से अपने पारिवारिक दुःख कहती है दूसरी उसका उत्तर देती है—

'पति मुझे रात को सोते से जगाकर पंखा मांगते हैं क्या करूँ ?'

'पीपल का पत्ता दे दो ।'

'मुझसे खेलने के लिये बच्चा मांगते हैं ।'

'उसे बन्दर का बच्चा दे दो ।'

'बहुत तग करते है । बार-बार पानी मागते है ।'

'उसे धोबी का घाट बता दो ।'

'बहुत भूख लगती है उनको । बार-बार खाना मागते हैं ।'

'तो क्या हुआ ? खाली बर्तन उनके सामने रख दिया करो ।'

पहली सखी के दुःख का अवश्य ही निराकरण हो गया होगा । वह भी हँस पडी होगी और पारिवारिक दु.ख की दवा हॅसी से बढकर शायद आज तक नही खोजी जा सकी है ।

झुनिया को छोडकर शायद सबको बुरी तरह प्यास लग गई थी । सबकी ऑखें मेरे घर से आने वाले रास्ते पर टिकी थीं । मैं भी सोचता था कि अभी पिता जी मजदूरों के लिये नहारी (जलपान इसलिए नही कि जल के साथ ही नहारी में कुछ अन्न भी होता है जैसे चना, बजड़ा, मक्का, मटर का भरना) लेकर आयेगे और मुझको इस राष्ट्र से निष्काषित होना पडेगा । मै जल्दी मे कई बार मिट्टी के छोटे रोडे झुनिया पर फेक चुका था । वह बार-बार पीछे मुडकर मेरी ओर देखती, मुस्कराती, और मैं सोचता–

काश ! एक्सीडेन्ट हो जाता ।

किन्तु

इसके बाद की बातें सोचता हूँ तो सारा दिन बेकार का लगता है । हाँ शाम को एक बार झुनिया के घर भी गया था । बडी देर तक उसके दरवाजे पर बैठा उसके घर वालों से बाते करता रहा । झुनिया कभी-कभी बाहर दरवाजे पर दिखलाई पड जाती थी किन्तु न तो वह कभी उस तरह मुस्कराई, न तो उसने मेरी ओर देखा ही और न तो

मै गॉव में ही पैदा हुआ हूँ किन्तु गाँव वालों से इतना दूर रहा हूँ कि मेरे और गॉव वालों के बीच एक बहुत बडी खाई पड़ गई है । मैं चाहता हूँ कि इस खाई को पार कर जाऊॅ किन्तु डर लगता है कहीं गिर न जाऊँ और फिर दोनों छोरों में से कोई भी छोर न मिले । काश ! मैं गाँव वालों के साथ फावडा चला सकता, कन्धे पर अँगोछा रखे बैलो के पीछे हल चला सकता, झुन्ड के झुन्ड घास गढ़ते हुए मर्द और औरतों के साथ घास गढ़ सकता, गाय, बैल और भैंस को चराने खिलाने के लिए भूखे पेट किसानों का एक डग भी साथ दे सकता, तो शायद झुनिया मेरे बहुत ही निकट आ सकती थी ।

किन्तु

जब मुझे बकरियों के पीछे-पीछे जगल झाडियाँ लाँघनी चाहिए थी मैं स्कूलों में पढ़ता रहा हूँ ।

गीता पढ़ने से पूर्व एक बात और याद आ गई, तो लिख ही लूँ कि आज मैंने भोला को बुलाया था । उससे मैने झुनिया की बात चलाई थी । भोला इस मामले में बहुत बदनाम आदमी है । मैंने उसकी मदद नहीं माँगी । वरन् केवल रहस्यवादी ढंग से पूछता रहा कि मुहब्बत करने के कौन-कौन तरीके हैं ? उसने

दो-एक उपाय बताये भी जैसे–

रुपया दिखलाना, सीटी बजाना, ऑख मारना, इशारे से अथवा वचन से ही किसी निर्जन स्थान का नाम बताकर वहॉ पहुँच जाना, अकेले मे बाँह पकड लेना, रात को सूने मे घर मे छुप जाना और अन्तिम उपाय उसने बताया कि यह सब कुछ नही करना पडेगा अगर मुस्मात राजी हो जाये ।

मुस्मात उसकी पडोस की एक विधवा है जिनका मुख्य काम तो नहीं, हॉ रुपया पाने पर कुछ भी कर सकती है ।

अब तो और भी बहुत-सी बातें याद आने लगी है किन्तु उन्हें नहीं लिखूँगा। समय अधिक हो गया है और अभी गीता पढ़नी है ।

"नही लिखा है तो बहुत अच्छा किया है हमको धीरे से बता देना । धन्य हो महात्मन् । यदि तुम्हे यही चिन्ता थी तो डायरी ही क्यों लिखा ? मरने के बाद नहीं मरने के पहले ही सचमुच कौशिक जी उल्लू हो तुम । "

17 अगस्त

एक्सीडेन्ट नहीं हुआ । और अब क्या होगा ? रात के 9 बजे हैं । भोर होते ही अपना घर छोड देना पडेगा । आज तो पिताजी ने भी टोक दिया 'छुट्टी तो खत्म हो गई न ?' भाभी चुटकी ले रही थी, 'क्या बात है कि इस बार आप कई दिनों घर पर रुक गये ?' मुझे विश्वास है कि मेरे रुकने का कारण किसी को भी पता नही । कोई जान भी कैसे सकता है ?

भोर से जो बारिश शुरू हुई अभी तक नहीं खुली । पूरे गाँव में पानी भर गया है । लगता है जैसे यह कोई गॉव नहीं नदी है जिसमें तमाम घोंसले तैर रहे हो । कही मुँह निकालना मुश्किल ।

दोपहर मे थोडी देर के लिए बारिश रुकी थी । सोचा एक बार झुनिया के घर का एक चक्कर लगा आऊँ किन्तु वहाँ तक जाने की हिम्मत नहीं हुई । बीच ही में सनेही के घर पर रुक गया । यहाँ से झुनिया का घर बिल्कुल पास ही है । मैं वही बैठा उसके घर की ओर घूरता रहा । वह एक बार दिखलाई भी पड़ी किन्तु उससे क्या होता है ?

राम सनेही बडा बातूनी आदमी है । वह मतलब की बात पूछता है । उसके घर के पीछे अमरूद के तीन-चार पेड हैं । किसी को एक अमरूद छूने नहीं देता । गाँव में करीब-करीब सबके घर से वह अमरूद के पीछे झगड़ चुका है । लगा अपना दुखड़ा रोने ।

मैं सोचता था कि किसी बहाने झुनिया यहाँ तक आ जाती तो उसे जी भर के देखता, बातें करता और फिर कौन जाने कितने दिनों बाद अपने घर आ सकूँ। तब तक

हवा बहुत तेज है । बौछार चारपाई तक आती है । कई बार अपनी चारपाई सरका चुका किन्तु जैसे यह बौछार भी झुनिया के याद की तरह मेरा पीछा कर रही हो । लालटेन कई बार बुझते-बुझते बची है ।

पिता जी बगल वाले घर में लेटे हुए हैं । उनको शायद अभी तक नींद नहीं आयी है । नींद न आने पर उनका नाक बुरी तरह बोलने लगता है । मेढकों का टरटराना बुरा लगता है जैसे घिसा हुआ रिकार्ड ।

इस समय राम सनेही की कोई बात नहीं याद आ रही है । हाँ एक बात उसकी जरूर चुभ गई । मैं कोई उत्तर नहीं दे सका । पूछ पड़ा था, 'क्यों बाबू हम लोग रात-दिन मरते हैं फिर भी हम लोगों को टूटी झोपड़ी तक नसीब नहीं होती और शहरों में कई मन्जिला कोठियाँ लोग बनवा लेते हैं ।' (उसके शब्द यही नहीं थे । किन्तु वह कहना यही चाहता था) मैं क्या उत्तर देता ? फिर भी उसी ने जैसे समझते हुए कहा, 'पूर्व जन्म का कर्म है । अपना-अपना भाग्य है ।'

मैं तब भी चुप रहा । इसलिए नहीं कि मैं इसका कारण जानता ही नहीं हूँ । जानने को तो वह भी जानता है किन्तु पूछता है और ऐसे ही पूछता रहेगा न जाने कब तक और उसे कोई नहीं बतायेगा कभी ।

जब लिखना बन्द करके अपने चारों ओर फैले अँधेरे में देखता हूँ तो इस अँधेरे में भी एक नाम उग आता है जैसे यह अँधेरा एक श्यामपट हो जिस पर सफेद खडिया से लिख दिया गया हो—झुनिया । जब कभी आँखें मूँद कर कलम मुँह में डालकर कुछ सोचने लगता हूँ तो अपने ही भीतर का अँधेरा एक सवाल पूछता है, 'झुनिया से यदि प्रेम करते हो, तो उससे शादी क्यों नहीं कर लेते ?'

किन्तु यह लालटेन जिसकी चिमनी टूटी हुई है और मैंने बहुत जुगाड से ठीक कर रखा है एक प्रकाश देती है और मैं बाहर भीतर के अँधेरे से बच जाता हूँ। तभी तो केवल एक्सीडेन्ट की बात सोचता हूँ ।

आज गीता नहीं पढ़ूँगा । आज की रात में सपना देखना चाहता हूँ ।

●

सबेरा

ऊपर के कमरे में कोई चारपाई खींच कर इधर से उधर कर रहा है । बगल में चड्ढा साहब के यहाँ, रेडियो से मीरा के भजन आ रहे हैं । पास-पड़ोस के और भी बहुत सारे रेडियो खुले हुए हैं । एक ही भजन । कोई हवाई जहाज अभी-अभी ऊपर से होकर गुजर गया था और तभी नींद टूट गई थी । चाहता हूँ दुबारा नींद आ जाए किन्तु नींद जो उचट गई फिर उचट गई ।

पडोसी मधूलकर साहब के यहाँ बर्तनों की खड़बड़ाहट, शायद कोई प्लेट गिर कर टूट गया । मधूलकर साहब चीख रहे हैं "कमीना रोज एक प्लेट तोड़ता है । तुम्हारी तनख्वाह से काट लूँगा ।"

"आज डबल रोटी नहीं चाहिये ।" मिस्टर घोष हैं ? डबल रोटी वाला देसाई के यहाँ चला गया है । मेरे यहाँ भी आएगा । कोई कार या ट्रक सड़क से गुजरी है, गुजरते ही रहते हैं । पहले ये सारी आवाजें अलग-अलग सुनाई पडती थीं, अब तो जो सुनना चाहता हूँ केवल उतना ही सुनाई पड़ता है । फिर हवाई जहाज ! इसकी आवाज तो कभी भी नही सुनना चाहता किन्तु मजबूरन "यहीं रख दो ।" डबल रोटी वाला, बगल में पड़े स्टूल पर मक्खन डबल रोटी रखकर निकल जाता है । दूध वाला भी आ जाता तो चारपाई छोड़ देता ।

'समय ?'

'लगभग छः बजे होंगे ।'

अनुमान लगाता हूँ । घड़ी मेरे सिरहाने पडी है और समय देखने में भी आलस्य लगता है ।

ओढ़ा हुआ चादर हटा लेता हूँ । अब कमर से लेकर सर तक उघड़ा हुआ हूँ । मच्छरदानी के झरोखे से बरामदे की हर गतिविधि देख सकता हूँ । अभी-अभी मिसेज चौधरी सकुचाती हुई मेरे पायताने की मच्छरदानी से रगड़ खाती हुई संडास की ओर गई हैं । शायद ही खाली हो । उन्हें भी लाइन लगानी पड़ेगी । लोग जगते हैं और संडास की ओर भागते हैं । जिसकी नीद पहले टूट जाए वहीं संडास का पहला आदमी है ।

पहले मैं भी पाँच बजे जग जाता था । 7 बजे ड्यूटी पर पहुँचना होता था। इधर जाने का समय जब से सात बजे की जगह दस हुआ है नींद टूटती ही

नही और यदि टूटती भी है तो अपने को टूटा हुआ नहीं मानती । चारपाई से जुडी पडी रहती है ।

बरामदे की बत्तियाँ लोगों ने जला ली है । रात थी तो बुझी हुई थी । रोशनी मे नींद ही नही आती । और दिन को भी बिना रोशनी के दिखाई नहीं पडता। मैं फिर चादर ओढ़ कर लेट जाना चाहता हूँ और चादर से मुँह ढँक लेता हूँ । चारपाई मेरे लेटे-लेटे ही यहाँ से उठकर अन्दर कमरे में पहुँच जाती तो कितनी अच्छी बात थी । अभी तक विज्ञान ने इतनी मामूली-सी समस्या का भी समाधान नहीं किया है । पडे-पड़े सोचने लगा हूँ ।

"शुभ प्रभात माथुर साहब !"

"गुड मार्निंग ।" मिस्टर श्याम को देखिए अभी तक पडे हैं ।

और दोनों हँसते हुए चले जाते हैं । मधूलकर साहब की छोटी बच्ची चीख रही है । कोई और बच्चा भी रो रहा है । दीवान साहब के घर के रेडियो से भजन बदल गया है । सेठ जी ऊँची आवाज में 'ओम जै जगदीश हरे ' गा रहे हैं । ऊपर के कमरे मे कोई टहल रहा है । जूते की खटर-पटर, जैसे मेरे सर को ही कुचला जा रहा हो ।

दूध की बाल्टी बोल रही है । काशी आ गया है । "नहीं, एक लिटर से अधिक नहीं । इसी में सभी को अँटाना है ।" घोष साहब को अक्सर अधिक दूध की जरूरत पड़ जाती है । बच्चे अधिक हैं । जब से उनकी श्रीमती जी बीमार पड़ी है उन्हे भी दिया जाने लगा है ।

घोष साहब के बाद देसाई साहब का कमरा फिर मधूलकर साहब, फिर सन्तराम, फिर मेरा कमरा । और मेरे कमरे के बाद बहुत सारे कमरे । तिवारी, चौधरी "यार ! दूध में पानी अब अधिक मिलाने लगे हो ।" सन्तराम अक्सर दूध वाले को टोकता रहता है । दोनों में कभी-कभी गर्मा-गर्म बहस भी हो जाती हैं फिर भी दूध लेने-देने का रिश्ता टूटता नहीं ।

मिसेज चौधरी लौट रही हैं । उनका भारी-भरकम शरीर, चार मन से क्या कम होगा । उनकी चाल दूर से ही पहचान मे आ जाती है । चलती है हथिनी की तरह छत कँपाती हुई । उनका मायका किसी देहातनुमा कस्बे में है । चौधरी साहब भी किसी गाँव में ही पैदा हुए थे । अक्सर अपने गाँव-घर की चर्चा छेड देते है । घर पर काफी जमीन जायदाद है । बहुत सारे बगीचे है । यदि सम्भव होता तो वह सभी कुछ अपने सॉथ उठाकर यहीं लाये होते ।

दूध वाला सिरहाने खडा होकर आवाज देता है । मैं कुछ नही बोलता तो फिल्मी गीत गुनगुनाते हुए चादर के नीचे से चाभी निकालता है । 'तुम्हें जिन्दगी के उजाले मुबारक ।' अक्सर गुनगुनाता रहता है । कई बार मन में बात आई होगी कि पूछूँ तुम से उसका अभिप्राय किससे है ? हम दूध लेने वाले लोग अथवा कोई दूसरी हस्ती जैसे भटनागर की बेटी सुमित्रा । कमरा खोलकर दूध रख रहा है ।

माथुर साहब गुजरते हैं तो बिना कुछ पूछे काशी बोल जाता है "लगता

ः, साहब रात देर तक जागते रहे ।''

"ऐसे ही हैं," माथुर साहब बिना रुके अपनी राह आगे बढ जाते है ।

बहुत पहले डर लगता था कि कही काशी मेरे कमरे से कोई सामान लेकर चलता न बन जाए । अब डर नहीं लगता । शायद मेरे कमरे मे कोई ऐसा सामान नही जो उसके रोजगार से अधिक फायदे का हो, और जिसके सहारे जिन्दगी कट जाए ।

भटनागर साहब के रेडियो की आवाज कुछ घडघडाने लगी । हो सकता है कही ऑधी चली हो । यहाँ तो आँधी का भी कोई प्रभाव नहीं पडता। आठ मजिली यह कोठी और ऐसी ही अनेक कोठियों से भरा-पूरा मोहल्ला । हवा पहुँच ही नही पाती । खिडकियो से गलियाँ दिखती हैं अथवा पड़ोसी मकान का कोई हिस्सा । सडक पर पहुँच कर आकाश दिखता है । सूरज शायद ही कभी दिखता हो ।

काशी कमरा बन्द करते हुए फिर वही गीत गुनगनाने लगा है । जबान पर चढ जाने की बात है । मेरे साथ भी अक्सर ऐसा ही होता है । गीत की कोई एक पक्ति सबेरे निकली तो फिर वही सारे दिन जाने अनजाने जिन्दगी के एक ही क्षण की तरह दुहराता चला जाता है । न जाने कितनी बार काशी ने कमरा बन्द किया होगा फिर भी गलती करता है । ताला बन्द ही नहीं हो पा रहा है ।

"चाभी लगी रहने दो । मै अभी उठ रहा हूँ ।" मच्छरदानी के भीतर से बिना उसकी ओर देखे बोलता हूँ । न जाने कैसे अभी तक मेरे भीतर यह ग्रामीण विश्वास टिका हुआ है कि सबेरे काशी का मुँह देखे लेने पर सारा दिन अच्छा नही गुजरता । ऐसे ही गॉव में सोमारी के लिए कहा जाता था कि जो कोई उसकी शक्ल सबेरे देख लेगा उसे दिन भर खाना नहीं नसीब हो सकता । उसकी भी एक ऑख काशी की तरह फूल कर बाहर निकली हुई थी । इतने दिन हो गए गाँव छोड़े फिर भी याद आती है । अक्सर याद आती रहती है ।

काशी चला गया और उसकी तस्वीर अभी तक ऑखों के सामने खिंची हुई है । आज शायद ही दिन अच्छा गुजरे ।

देवता सिंह अपने बच्चो को पीट रहा है । अक्सर बीबी-बच्चों को पीटता रहता है । रेलिंग के सहारे लोग नीचे झॉक कर तमाशा देख रहे है । किसी में हिम्मत नहीं कि उसे जाकर रोके ।

एक बार मैंने उसे टोका, तो रुआसा हो गया था । "मै क्या करूँ ? ये साले समझते ही नहीं । कुल डेढ सौ रुपयो मे किसी तरह गुजारा हो पाता है और इस साले को टेरिलिन की कमीज चाहिए ।" उसने अपने लडके को फिर पकड़ लिया था और पीटने लगा था । आखिर इसमें बच्चों का क्या दोष ? दोष तो उसी का है । नाराज होना चाहिए तो बच्चो को ही । जब कोई पिता टेरिलिन की नई कमीज नहीं सिला सकता था तो उसने बच्चा पैदा ही क्यों किया ? देवता सिंह के बच्चों को चाहिए वे देवता सिह को पीटें ।

इस विचार को यदि पेटेन्ट करा सकता तो कितनी अच्छी बात होती और तुरन्त हार्डी के 'जूड द ऑब्सक्योंर' के बच्चों की याद आती है और लगता है मै विदेशी माल की स्मगलिंग कर रहा हूँ । हिन्दुस्तान का बच्चा अपने बाप को उसके गुनाह के लिए कभी नहीं पीट सकता । यह हक केवल पिता को है ।

संतराम की बहू अपने कमरे के सामने बरामदे में झाडू लगा रही है । यह काम अक्सर वही आरम्भ करती है, फिर सभी कमरों से झाडू निकलते हैं और वरामदे में एक शोर भर जाता है जैसे सभी लोग एक साथ नाक साफ करने लगे हों ।

"गमला टूट गया ।" मिसेज चौधरी बोल रही हैं ।

"टूट गया, कौन-सा ?" और चौधरी साहब की परेशान आवाज गमले के करीब पहुँच गई है । टूटे हुए टुकड़ों को जोड़ रहे होंगे । मैं इस स्थिति को पूरी तरह अपने मन में उतार रहा हूँ, एक तस्वीर की तरह । गमला टूटा हुआ है । चौधरी साहब, उनका लड़का संजय, उनकी बडी लड़की श्रुति, उस गमले को घेर कर बैठे हुए हैं जैसे गमला कोई एक लाश हो ।

"टूट कैसे गया ?" चौधरी साहब की आवाज में वही झल्लाहट है जो किसी की मृत्यु से होती है ।

"पानी डाल रही थी । बाल्टी टकरा गई ।" श्रुति की आवाज भय से काँप रही है और फिर एक मामूली सी चखचख ।

"तुम्हें कोई तमीज नहीं ।"

"पता नहीं ससुराल में कैसे गुजर होगा ।"

"तुम पानी मत डाला करो ।"

और फिर लाचारी का समझौता, "इसे ऐसे ही पड़ा रहने दो । शाम को दूसरा गमला लेता आऊँगा तब इस फूल को रोपेंगे ।"

"पता नहीं यह गुलाब कहीं सूख न जाये ।" यह संशय लिए लोग चुप हो रहे हैं । चुप क्या हुए हैं दिन भर इसकी चर्चा कुछ और तेज होगी और फिर हमेशा के लिए लोग भूल जाएँगे । किसी मृत्यु को लेकर भी अधिक से अधिक इतना ही होता है । सेठ जी अब जोर-जोर से रामायण पाठ करने लगे हैं । उनके रामायण पाठ से पूरी कोठी का रामायण पाठ हो जाता है । एक दिन रामायण पाठ के बाद अन्तिम दोहा उन्होंने पढ़ा था–

"सतसैया के दोहरे ज्यों नावक के तीर, बोलिए पवन-सुत हनुमान की जै, सब सन्तन की जय "

"देखत के छोटे लगें घाव करे गंभीर, सियावर रामचन्द्र की जय " उस दिन तो जी खोलकर खूब हँसा भी था, आज भी जब याद आती है । हँसी आ जाती है ।

धुआँ ! देसाई साहब के यहाँ अँगीठी जली है । उनका कमरा छोटा पड़ता है इसीलिये श्रीमती देसाई अँगीठी जलाकर बरामदे में दहकने के लिये रख देती

इ । सभी को बुरा लगता है दूसरों की अँगीठी का धुँआ, पर जलाते सभी है ।

केवल मै नही जलाता, तो मेरा क्या ?

"तुम्हारा क्या ? आगे नाथ न पीछे पग्गह, खाय मुटाय के भैले गद्दह ।" सन्तराम कहता है । "बीबी बच्चे होते तो आटे दाल का भाव पता चलता ।"

उठना चाहिए, मै सोचता हूँ और झटके के साथ उठकर बैठ जाता हूँ । नीद टूटने के साथ सिगरेट पीने की तरह बदन तोड़ने की भी जैसे आदत पड गई हो ।

"शुभ प्रभात" मै मुस्कराते हुए उनके अभिवादन का उत्तर देता हूँ । मच्छरदानी समेटकर ऊपर कर लेता हूँ ।

"आज बड़ी देर तक सोते रहे । दफ्तर जाना है न ?"

"हाँ जाना तो है," मधूलकर साहब के फेके हुए प्रश्न को जैसे मै चुन रहा होऊँ ।

वे मुस्कराते हुए चले जाते हैं । मैं अपना बिस्तर समेटने लगा हूँ ।

सूरज की कोई किरण अभी तक नही दिखाई दी । किसी मुर्गे की आवाज भी नहीं सुन सका। कोई तारा ढलता हुआ नहीं दिखा, फिर भी सबेरा हो गया । "सर्दी जाकर लौट आई ।" देसाई साहब बोल रहे हैं ।

"कल के समाचार-पत्र मे था तो कहीं बर्फ गिरी है ।" चौधरी साहब हैं।

"कहीं पास-पड़ोस में सूरज भी निकला होगा ?" मैं पूछना चाहता हूँ फिर भी कुछ नहीं पूछता । सबेरा हो गया है यह मैं मान लेता हूँ ।

●

निचली परत

वे रामधन पाण्डे को सड़क तक छोड़ने आए तो भी घूम-फिर कर उस एक ही बिन्दु के इर्द-गिर्द बातें चलती रहीं । ज्यों-ज्यों सड़क करीब होती गई उनको लगता रहा कि बात अधूरी ही छूटी जा रही है । केवल बनियान और पाजामा पहने कमरे से बाहर न आये होते तो शायद और दूर तक पहुँचाने चलते। इसी बहाने कुछ और पूछ लेते । सामुद्रिक शास्त्र में कभी भी आस्था नहीं रही । इस ओर ध्यान ही नहीं दिया। कीरो का बहुत नाम सुना था । रावण-संहिता की चर्चा भी नई नहीं थी। किन्तु यह सब कुछ उन्हें आज तक ठग-विद्या ही लगती रही । कभी किसी को अपनी हस्तरेखाएँ दिखाई ही नहीं । क्या होगा दिखाकर ? अपना भविष्य जान लेने से लाभ भी क्या ? जो जैसे है चलता रहे । चलता ही है । होनी को कौन रोक सकता है ? जो कुछ मनुष्य चाहता है, जिसके लिए एकान्त मन से प्रयत्नशील होता है, एक न एक दिन उसे मिल ही जाता है । हस्त-रेखाओं से भूत, भविष्य और वर्तमान का पता लगाना अटकलबाजी है । संयोगवश कुछ सही परिणाम भी निकल आए तो क्या अन्तर पडता है ?

किन्तु रामधन पाण्डे पर इन बातों का कुछ भी प्रभाव नहीं पडा । बचपन बहुत सुख से बीता था । सबका स्नेह मिला था । दो-दो बड़े भाइयों का स्नेह । माता-पिता का स्नेह । पढ़ने-लिखने में कुशाग्र बुद्धि के थे इसलिए उनके अध्यापकों ने भी उन्हें पुत्र की तरह चाहा ।

पाण्डे जी ने इस ढंग से सारी बातें कही थीं जैसे उन्होंने स्वयं अपनी आँखों से सभी कुछ देखा हो । "पन्द्रह-सोलह वर्ष की अवस्था में भयानक रोग का योग आया होगा। कभी छोटपन में किसी ताल-पोखरे में डूबने का योग भी है ।" देवीशंकर केवल हाँ करते रहे । कभी-कभी उस घटना का विस्तार से विवरण देने लगते जो एक तरह से बिल्कुल भूल ही चुके थे । रामधन पाण्डे की बातो से एक विचित्र सुख मिल रहा था उन्हें । स्वयं उनकी भी दृष्टि अपनी हस्तरेखाओं पर गड़ गई थी । आयु रेखा, भाग्य रेखा, विद्या रेखा, विवाह, दो-दो दीर्घ-जीवी संतान । सभी कुछ तो है ।

"बीच के कुछ वर्षों में कष्ट लिखा है ।" पाण्डे जी ने बहुत दुःखी भाव से अपनी दृष्टि उनकी हस्तरेखाओं से हटाकर उनके चेहरे पर जमा ली थी ।

"हॉ झेलना पडा था ! वी.एस.सी. का अन्तिम वर्ष था । दोनो भाई पिताजी से अलग हो गए । पिताजी की नौकरी बहुत पहले छूट चुकी थी । पेन्शन का भरोसा था, वह भी खाने-पीने भर को बहुत मुश्किल से चल पाता था । ट्यूशन के लिए दरवाजे-दरवाजे घूमना पडा । रहन-सहन मे लापरवाही आ गई जो अक्सर गरीबी छिपाने के लिए बौद्धिक प्रयास स्वरूप आ जाती है । कई वर्षों तक यही स्थिति रही । एम एस.सी. कर चुकने के बाद भी कई वर्षो तक इसी सघर्ष से जूझना पडा । वृद्धावस्था मे माता-पिता को जितना सुख मिलना चाहिए था उसका शतांश भी नही पहुँचा सके ।"

"अब तुम्हारे बुरे दिन बीत गए देवीशंकर ।" रामधन पाण्डे उल्लसित लगे थे, "एक उसी बात का ध्यान रखना । अपनी ओर से प्रयत्न करना ऐसे तो सभी कुछ ईश्वर के अधीन है ।" रामधन पाण्डे सडक से अपनी राह मुडते हुए कहते गए ।

"ठीक है, कल फिर मिलेगे ।" देवीशंकर का मन अभी भरा नहीं था। लौटते हुए पाण्डे जी की एक-एक बात प्रत्यक्ष होकर उनके सामने उभर रही थी । अतीत के प्रति कोई मोह नहीं था । भविष्य में घटने वाली अन्य सभी बातों की ओर भी उनका ध्यान नहीं था । एक वही बात डरा रही थी ।

यदि सचमुच ऐसा हो गया तो अब तक की अर्जित सारी प्रतिष्ठा धूल में मिल जायेगी। क्या कहेगे लोग ? सभी उँगली उठाएँगें । तरह-तरह की बातें उड़ाने में भला देर ही कितनी लगती है ? थोड़ा सा अवसर मिला नहीं कि लोग तिल का ताड़ बना देते हैं । 'बहुत भोला दिखता था । बहुत चरित्रवान बनता था। एक नम्बर का बगुला भगत निकला ।' और भी बहुत सी बातें । हिन्दुस्तान में अन्न की कमी हो सकती है किन्तु अफवाहों की कमी नहीं रही है ।

"हमारी तुम्हारी तो बात ही क्या ? भगवान श्रीकृष्ण भी इस चक्कर से नही उबर सके । यदि कोई बात हो गई तो सदा के लिए पछतावा रह जाएगा । यह जो माउन्ट ऑफ वीनस से भाग्य रेखा को मिलाती हुई भग्न रेखा है, इसका फल यही होता है ।" पाण्डे जी के वाक्य की शिरो-रेखा सी उसी भाग्य रेखा को देवीशंकर बार-बार घूरते रहे । कहीं ऐसा होता कि इस रेखा को ब्लेड से खुरच देने से इसका प्रभाव सदा के लिए मिट सकता तो यह भी कर सकते थे । थोड़ा कष्ट ही तो होता, सह लेते । आजीवन घुट-घुट कर अपमान का विष पीते रहने की अपेक्षा यह क्षणिक पीडा चाहे जितनी भी हो, कम ही होगी ।

कमरा खुला छोड़ गये थे । पहुँचते ही चारपाई पर चादर की तरह बिछ गए और पड़े रहे । तमाम वर्षों के छात्र-जीवन में ऐसा अवसर नहीं आया । मन से चाहे जो भी रहे हो, व्यवहार से तो सदा ही दूसरों के समक्ष आदर्श ही बने रहे । बीते वर्षो से नौकरी भी करते रहे है । किन्तु कभी किसी को कुछ कहने-सुनने का मौका ही नही दिया । लड़के-लडकियों से समान व्यवहार न भी रख सके हों, तो भी समाज-स्वीकृत व्यवहार तो रहा है । थांडी-सी व्यावहारिक भिन्नता निभानी ही

पडती है ।

ऑगन से बिमला के रोने की आवाज आई । यदि कोई और दिन रहा होता तो तुरन्त उठ गए होते । दौडकर उसे गोद में उठा लेते, दुलारते, पुचकारते, किन्तु आज अनसुनी कर गए । चारपाई छोडकर उठने को मन ही न हुआ। दूसरी ओर करवट बदल कर आँखे मूँद लीं । अपने ऊपर नियन्त्रण रखना होगा । किसी से भी इतना मेल-जोल ठीक नहीं है । यदि कोई मित्र न हो तो शत्रु का प्रश्न ही नहीं उठता । कौन जाने कब उन्हें ठोकर खानी पड़े ।

'कौन हो सकती है लांछित करने वाली ।' वे सोचने लगे । कॉलेज की एक-एक लड़की का चेहरा याद आया, साथ ही उनके व्यवहारों का भी विश्लेषण करने लगे । मीरा ? कुछ अधिक हँसती है । देखती भी कुछ ऐसे ढंग से है जो मन को बहुत अच्छा लगता है । प्रयोग में कितनी गलतियाँ कर जाती हैं ?

क्षण भर, भावी लांछित जीवन का अपमान भूलकर आनन्द ले सके कि तुरन्त उनका मन सचेत हो गया। कल से ही अपना व्यवहार बदल देंगे । किसी भी भूल को नहीं क्षमा करेंगे । किसी भी प्रकार का तरल प्रोत्साहन नहीं देंगे । केवल मीरा को ही नहीं, चाहे जो भी हो रेखा, वीणा, दमयन्ती । अपने व्यवहार में कोमलता लायेंगे ही नहीं । तत्काल उनके मुख पर एक कठोरता घिर आई । ऑखों में कोई रोशनी जैसी गर्म चीज बुझती हुई महसूस हुई ।

बिमला अभी तक रो रही थी, उसकी माँ ने उसे गोद में उठा लिया था और उसे पुचकारती हुई ऑगन में ही डोल रही थी ।

चुप हो जा बेटी मेरी ढुन्नी-मुन्नी मेरी रानी मेरी लल्ली-भल्ली ।

''ऊँऽऽऽ ऊँऽऽऽ किसी ने माल दिया है ? किसने माला है ? छकर चाचा ने ? छंकर चाचा बड़े वैसे हैं । हम भी उनको मालेंगे । हूँ चुप हो जा । छकर चाचा से मत बोलना । हम भी नहीं बोलेंगे ।''

देवीशंकर लेटे नहीं रह सके । अपना नाम इस तरह बार-बार दुहराया जाना बुरा लगा । चारपाई पर बैठे-बैठे न जानें कितने तरह के विचारो में डूब गए। 'हो सकता है लांछित करने वाली औरत यही हो,' इस विचार के साथ उन्हें लगा कि जिसे वे ढूंढ़ रहे थे अचानक वह मिल गई । सच, यही औरत है । कॉलेज की लड़कियों के सम्बन्ध मे सोचना ही गलत था । दूसरी कोई औरत नहीं हो सकती। बस यही है, जैसे ऑख-मिचौली खेलते हुए भागने वाले को उन्होंने पकड़ लिया हो और उसे टटोल रहे हों । तो पहले भी आशा भाभी को लेकर हँसी मजाक में यार लोग छेड़ते रहे है । जब से इस मकान में आये तभी से कुछ न कुछ तो सुनना ही पडता रहा है । इधर ध्यान ही नही दिया । यही सबसे बड़ी भूल हुई । यदि पहले से ही व्यवहार मे संयम रखा होता तो इतनी निकटता आती ही नहीं । यहाँ कौन किसका होता है ? सभी अपने स्वार्थ के पीछे भाग रहे है । व्यवहार की हर इकाई के साथ एक प्रश्न सभी की आँखों में जन्म लेता है, 'ऐसा क्यो ?'

'देवीशंकर बलराज की पत्नी से इतना घुला-मिला क्यों है ?'

'पडोसी है ।'

'और भी तो वहुत से पडोसी होते हैं । केवल यही दोनो तो इस दुनिया म नही है ? अवश्य कोई न कोई अन्दरूनी बात होगी ।'

'बलराज और देवीशंकर दोनो गहरे दोस्त है ।'

'तो ? यह भी कोई वात हुई ? हम भी तो किसी के दोस्त हैं । किन्तु ऐसे नहीं ।'

'शकर को बलराज की मुन्नी से बेहद प्यार है ।'

'आखिर क्यों न हो ?'

'देवीशकर आशा को अपनी भाभी की तरह मानता है ।'

'ये सब प्रेम के आधुनिक सभ्य तरीके हैं । यहॉ तो रक्षाबन्धन के दिन राखी बॉधी जाती है और दूसरे ही क्षण ।'

देवीशंकर चारपाई छोडकर खडे हो गये । उन्हें आश्चर्य हुआ कि कैसे आज तक यह सत्य उनकी दृष्टि से छिपा रह सका ? स्वचालित यन्त्र की भाँति पैन्ट पहना, वनियान के ऊपर बुशर्ट डाली, बालों में कंघी फेरा और जब एक तरह से बिल्कुल तैयार हो गए तो उन्होंने स्वयं से पूछा–'कहाँ ?'

"कहाँ चल दिए ?" बिमला को गोद में लिए आशा खिड़की के सामने खडी थी ।

चौंक गए देवीशंकर । मनस्तापी विक्षोभ से सुलग उठे जैसे चोरी करते हुए पकड़ लिये गए हों । जिस वेबाकी से अपनी आशा भाभी से हँस-बोल लेते थे वह वेबाकी रही ही नही । सम्भावित अपमान की लज्जा से संकुचित हो गए। आँखे मिला सकने का साहस ही नही रहा । सहज क्रिया स्वरूप एक क्षण को जो दृष्टि मिली, उतने से ही उतर गए ।

आशा ने पुनः पूछा–"कहॉ की तैयारी है ?"

इस अल्पावकाश मे जैसे निर्णय ले चुके हों । बहुत रूखी दृष्टि लिए उनकी ओर मुड़े, "क्यों ? आपको इससे मतलब ?"

आशा की गोद में बैठी बिमला मुस्करा रही थी और अपनी दोनों बाहों को इस तरह डुला रही थी जैसे अपनी माँ की गोद से उतर कर उनकी गोद में चढ़ना चाहती हो ।

देवीशकर के स्वभाव का यह आकस्मिक परिवर्तन आशा के मन में बहुत तेजी से चुभा । अपमान का इतना कड़वा विष झेला नहीं गया। वह रूआँसी हो आई और खिड़की के सामने से किनारे हट गई । 'क्या हो गया है इन्हें ?' अपने-पराये का बोध ऐसे अवसरों पर कुछ अधिक तीव्र हो आता है । अपने ही ऊपर उसे क्रोध आया । क्यों पूछा ही उसने ? कौन लगता है वह ? जहाँ मन मे आये चला जाये उसे क्या ?

देवीशंकर ने कमरे का दरवाजा भीतर से बन्द कर लिया और कुर्सी खींच कर बैठ गये जैसे यह सारी तैयारी कमरा बन्द करके बैठने के लिये ही उन्होंने की

हो । क्षण भर पहले कही हुई अपनी ही बात का एक-एक शब्द तौलते रहे । उन्हे लगा कि अब तक की अर्जित निकटता एक ही झटके में उन्होने तोडकर बहा दी है । भीतर से पीडा भी कम नहीं हुई । क्या सोचती होगी ? इतना पूछकर ही उसने कौन-सा अपराध कर दिया ? क्या जितने लोग निकट आते है, सबका अनुचित सम्बन्ध होता ही है ? घर पर अपनी सगी भाभियाँ भी इतना ध्यान नही रखती है। इसका वश चले तो एक दिन भी होटल में नहीं खाने दे । और होटल भी तो केवल नाम के ही लिए है । महीने में पन्द्रह दिन तो यहीं खाते है । कभी खीर, कभी मछली, कभी पकौड़े, कोई तीज त्यौहार । कुछ न कुछ तो लगा ही रहता है । बलराज भी कितना ध्यान रखता है जैसे सगा भाई ।

वे कुर्सी छोडकर खड़े हो गये । बिना किसी पूर्व निश्चय के अपनी अटैची खोली । कपड़ों को एक-एक करके बाहर निकाला । पुरानी चिट्ठियों को कुछ देर उलट-पलट कर एक बडे लिफाफे में सभी को एक साथ भर दिया । फिर एक-एक कपडे को पूर्ववत् व्यवस्थित ढंग से रखने लगे जैसे अपने भीतर इसी प्रकार की स्वनिर्मित अव्यवस्था को व्यवस्थित करना चाहते हों । 'क्षमा माँग लेना अच्छा रहेगा' उन्होंने सोचा । कह दूँ कि तबियत कुछ ठीक नही है । कुछ ऐसी बात हो गई है जिससे मस्तिष्क काम नहीं कर रहा है अथवा और कोई बहाना । इस विचार के साथ ही मन कुछ हल्का हो गया। उन्होने उठकर दरवाजा खोला । कुछ देर तक खुले किवाड के दोनो पल्लो को पकडकर खड़े रहे फिर भीतर की ओर मुड गए ।

भीतर की ओर मुडते ही आशा भाभी से उनकी दृष्टि टकरा गई थी । खिड़की की सलाखों को पकडे भरी ऑखो से वह उन्हे ही घूर रही थी जैसे पूछना चाहती हो । 'आखिर यह परिवर्तन क्यों ?' बलराज अभी बाजार से नहीं लौटा था। हर रविवार को मछली खाने का शौक जो है । बख्शीपुर में नही मिली तो उर्दू बाजार चला गया होगा । यदि इस समय वह होता तो उसी से कहती । वही पूछता।

'नहीं,' न जाने कैसे सारा पूर्व निश्चय बदल गया । तुरन्त कमरे से बाहर निकल आये । बाहर किवाड़ को कुछ इस तरह खींचकर बन्द किया जैसे किसी भयानक हिंसक पशु को भीतर बन्द कर रहे हों जो तनिक भी अवकाश-सन्धि पाकर बाहर निकल आएगा और उन्हें मार डालेगा ।

घर एक गली मे पड़ता था । गली के दोनों ओर इतने ऊँचे-ऊँचे मकान थे कि सूरज लगभग ढँक जाता था । सड़क तक पहुँचने के लिए पचास-साठ गज तो चलना ही पडता था । इस बीच की सीलन और बदबू अक्सर लोग बहुत तेज चलकर अथवा रूमाल से नाक ढँककर पार करते थे । 'घर ही बदल देगें,' कुछ दूर गली पार कर चुकने पर देवीशंकर ने निर्णय लिया । न तो उन्होंने अपनी नाक रूमाल से ढँकी और न चाल ही तेज की ।

सड़क पर पहुँचकर पान वाले की दुकान पर रुक गये । पान लेकर भी

रुके ही रहे । कुछ समझ मे नही आ रहा था कि कहाँ जाएँ । गोयल के यहाँ ठीक नही रहेगा । बोस से कुछ खुल कर बात की जा सकती है किन्तु बात करने से ही क्या होगा ? वह घर नहीं तलाश सकता ।

"थोडी मीठी सुपाडी और देना," उन्होने मुस्कराते हुए अपनी दाई गदोरी पान वाले के सामने फैला दी । सुपाड़ी फॉकते हुए वहाँ से चले तो जैसे निर्णय ले चुके हो । यहाँ से सीधे वर्मा के घर की ओर मुड गए ।

कितने तो परिचित हो गये है इस मुहल्ले में, फल वाले ने उन्हें दूर से ही देखकर सलामी दी तो चौंक गए । 'अब इस मुहल्ले को ही छोड़ देना होगा ।' मुहल्ले के सभी लोग कितना सम्मान करते हैं । यदि इसी मुहल्ले में बदनामी हुई तो ? उन्होने उस स्थिति की कल्पना की जब वे बदनाम हो चुके हैं । सभी उन्हें देखते ही उपेक्षा से मुँह फेर लेते हैं । थूकते हैं-देवीशंकर थू । दोस्त के साथ धोखा, विश्वासघात । ऐसा नहीं करना चाहिए था । पढे-लिखे लोग तो और भी गिरत जा रहे हैं । पता नहीं पढ़ने का क्या अर्थ है । डिग्री ब्लफ है, दूसरों को छलने का एक लायसेन्स है ।

देवीशकर को लगा कि उन पर चारो ओर से पत्थर की तरह गालियाँ फेकी जा रही हैं । मुहल्ले के छोटे-बडे सभी उनके पीछे अपमान के कुत्ते दौड़ा रहे है, 'देवीशकर यहॉ से भाग जाओ । यदि भला चाहते हो तो छोड दो मुहल्ला ।' बलराज भी है । सारी भीड़ मे आगे ।

देवीशकर सफाई देना चाहते हैं । किन्तु उनकी बात कोई नहीं सुनता । कोई सुनना ही नहीं चाहता ।

'तुम्हारी कोई नहीं सुनेगा । इतना तो सभी जानते हैं कि दोष स्त्री का कम नहीं होता । यदि वह नहीं चाहे तो ।' रुक गये थे रामधन पाण्डे । इतना ही काफी था । 'वद अच्छा वदनाम बुरा ।' कबीर दास के कई दोहे सुनाये थे । 'तिरिया-चरित्र समझना मुश्किल है । विज्ञान का प्रभाव इस चरित्र को और जटिल बनाता जा रहा है । शरीर और मन के बीच की दरारें और गहरी होती जा रही हैं।'

'तुम्हारा दोष यदि न भी हो और कोई स्त्री लांछन लगाए तो मान लिया जायेगा । सभी स्वीकार कर लेंगे । मैं भी कहूँगा कि देवीशंकर ऐसा ही है । लोग आज भी स्त्रियों को गोभी-टमाटर से अधिक नहीं समझते ।'

देवीशंकर की चाल तेज हो गई थी जैसे कहीं छुप जाने के लिए दौड़ रहे हो । पसीने से लगभग भींग चुके थे । गला खुश्क हो गया था । रास्ते में रुक कर पानी पीने का ख्याल हुआ तो टाल गये, 'वर्मा का घर अव है ही कितनी दूर ? वहीं पानी पीयेंगे ।' उन्होंने अपनी चाल कुछ और तेज कर दी । यदि वह घर पर नहीं मिल सका तो ? थोड़ी देर रुक कर प्रतीक्षा कर लेंगे । मिसेज वर्मा तो होंगी ही। उन्हीं से तव तक बातें करेंगे । नहीं मिसेज वर्मा से पूछ कर चल देंगे, रुकेंगे नहीं। वही से बोस के यहाँ चल देंगे या घर लौट आयेंगे । मित्र की अनुपस्थिति में उसके घर बैठ कर उसकी पत्नी से बात करना अच्छी बात नहीं । मेहता इसी कारण

बदनाम हो गया । पिट गया होता । वह तो लोगो ने टण्डन को समझा बुझा कर ठण्डा कर दिया । उसकी तो आदत ही बन गई थी । 'वर्मा को घर पर ही होना चाहिये । इस समय जायेगा भी कहाँ ?' उन्होंने घडी देखी,, 'सवा दस ।' पता नहीं, कैसे इस समय ज्ञान के साथ ही उनका निश्चय दृढ़ हो गया । 'वह घर पर ही होगा । क्या कहेंगे ? कैसे बात शुरू करेंगे ?'

वर्मा के घर पहुँचने तक न जाने कितनी तरह की बातें पानी के बुल्ले की तरह उनके मन में उठी और बिला गईं । वर्मा को देखकर वही व्यावसायिक हँसी उनके चेहरे पर खिल आई थी जो एक दोस्त से मिलते हुए खिलनी चाहिए । क्षण भर के लिए उन्हें लगा कि उनकी कोई समस्या नहीं है ।

"कहो बेटा ! क्या नक्शे पानी हैं ?" वर्मा के पूछने का एक खास अन्दाज है । अक्सर मिलते ही पहली बात वर्मा के मुँह से यही निकलती है या 'कहो बेटा ! जवानी कैसे गुजर रही है ?' और मुस्कराता है ।

"ठीक है ।" देवीशंकर की बात उनके गले की ही तरह सूख गई । क्षण-भर पूर्व की व्यावहारिक औपचारिकता जैसे कहीं पीछे टंगी रह गई हो जिसे उतार पाना उन्हें कठिन लग रहा हो ।

"क्यों ? कुछ उखड़े-उखड़े लग रहे हो । अरे इन्दिरा । यह देखो, नूरे-नज़र,लख़्ते-ज़िगर, राहते-ज़ान, बर्ख़ुरदार देवी-जी-शंकर कहीं से पिट कर तशरीफ लाये हैं ।"

देवीशंकर ने चाहा तो बहुत कि उनकी हँसी भी वर्मा की हँसी मे घुल जाये किन्तु ऐसा हो नहीं सका था । "पहले एक गिलास पानी पिला दो । धूप बहुत है।" जैसे अपने उखड़ेपन का कारण स्पष्ट कर रहे हो । "भाभी नमस्ते !" इन्दिरा आ गई थी ।

"इन्हें ठण्डा पानी पिलाओ ।" वर्मा ने अपनी पत्नी की ओर उलट कर देखा और तुरन्त देवीशंकर की ओर मुड गया । "आज खाना भी यहीं खा लो ।"

"हाँ आज यहीं खा लीजिए ।" इन्दिरा ने भी आग्रह किया था ।

देवीशंकर प्रसग टालना चाहते थे । "बलराज के साथ खाना है ।" और संकुचित हो आये थे जैसे वर्मा इसके प्रत्युत्तर में क्या कहेगा उन्हें पहले ही एहसास हो गया हो "हाँ बेटे तुम्हें भला यहाँ का खाना क्यों रुचेगा ?"

"एक दिन यहीं खा लीजिये न ।" वर्मा की पत्नी वहाँ से चलते हुए रुक कर उनकी ओर मुड़ गई थी।

देवीशंकर के चेहरे पर एक तनाव आ गया था । उन्हें लगा था ये सभी लोग उन्हें चिढ़ा रहे हैं । शायद इन्हें भी सन्देह है । सोचा कि यहाँ से उठकर चल दें । कितना ओछा विचार है ? वर्मा ने ही इन्दिरा भाभी को बताया होगा नहीं तो कम से कम वे तो नहीं व्यंग्य करती । उन्हें लगा कि वे पहले से ही लांछित हो चुके हैं । आज तक उन्हें पता नही था कि उनके सम्बन्ध में लोग क्या सोचते हैं । और अब जानकर ही वे क्या कर रहे हैं ? कैसे इस वर्मा के बच्चे को समझाए कि उसकी

धारणा गलत है । "आज भूख नहीं है । फिर किसी दूसरे दिन ।" इन्दिरा चली गई तो भीतर से कुछ सख्त हो आए, "सुनो, मै उस घर को छोड़ना चाहता हूँ ।" देवीशकर जैसे सफाई दे रहे हो। उनका चेहरा बुझ सा गया ।

"घर छोड़ना चाहते हो ?" वर्मा ने अविश्वास से उनकी बात को प्रश्न बना लिया था, "किन्तु क्यो ?"

"वैसे ही, बहुत दिन हो गए वहाँ रहते ।" देवीशंकर ने मुस्करा कर अपने भीतर के इस एहसास को ढँकना चाहा था कि यह घर छोडने का कोई तर्क नही है ।

"क्यों कोई बात हो गई है क्या ?"

इन्दिरा पानी लेकर आई तो वर्मा ने बीच में ही उसके हाथ से गिलास ले ली जैसे संकेत कर रहा हो 'तुम यहॉ से चली जाओ । हम बहुत आवश्यक बातें कर रहे हैं ।' उसने अपनी कुर्सी और आगे खींच ली । गिलास देवीशंकर के हाथ में पकड़ाते हुए वह आगे को झुक कर बहुत करीब हो गया ।

देवीशंकर ने एक ही घूँट में पूरा गिलास खाली कर दिया । एक किनारे मेज पर गिलास रख दिया । मुँह पोंछते हुए वर्मा की ऑखों से काँपते प्रश्न को पढ़ा। "बात क्या होगी ? ऐसे ही । अब किसी के साथ रहना नहीं चाहता । कोई घर है तुम्हारी नजर में ?"

"घर तो मिल ही जाएगा किन्तु पहले बताओ तो क्या बात है ?"

"सब बता दूँगा । पहले घर बताओ ।" देवीशंकर एक जिद्दी बच्चे की तरह अपनी बात पर अड गये थे ।

"एक घर तो है लेकिन किराया "

"कितना किराया है ?"

"मॅहगा है यार ! और जगह भी कुछ खास नहीं है । एक कमरा है, रसोई घर है ।"

"और लैट्रिन बाथ-रूम ?"

"वह तो ठीक है ।"

"तो चलो, अभी देख लेते हैं ।" देवीशंकर कुर्सी छोड़कर खड़े हो गये। "इतनी जल्दी क्यों ? चलते हैं यार ।" देवीशंकर ने वर्मा की बाँह पकड़ ली थी। "रुको यार चलता हूँ ।" वर्मा भी उठ गया था । "आखिर बात क्या है ?" वर्मा ने एक बार फिर इसी प्रश्न को दुहराया था ।

"चलो रास्ते में कहूँगा ।" किसी भी तरह वर्मा को वहाँ से ले चलना चाहते थे देवीशंकर । वह पैर में चप्पल घसीटता बाहर निकला था, जैसे देवीशंकर उसे ही घसीट कर निकाल रहे हों । "हाँ, अब कहो ।" घर से बाहर सड़क पर पहुँचकर उसने फिर पूछा था । वह बगल में सटकर चलने लगा था ।

देवीशंकर फिर सोचने लगे थे, क्या कहें ? "कुछ भी नहीं ? बात कुछ नहीं हैं । तुम्हें हस्तरेखाओं में विश्वास है ?"

"टालो नहीं, हस्तरेखा से और तुम्हारे घर बदलने से क्या सम्बन्ध ?" उसने देवीशकर के चेहरे पर अपनी तेज दृष्टि गडा दी थी ।

"सम्वन्ध है, तभी तो कह रहा हूँ ।" देवीशकर ने अपनी दाईं गदोरी खोलकर अपनी आँखो के सामने कर ली थी जैसे शीशे में अपना मुँह देख रहे हो। कैसी तो हो आई थी आकृति । मन की उद्विग्नता जिसे वह भीतर से महसूस कर रहे थे कितनी साफ झलक रही थी ।

वर्मा बहुत ही सतही ढंग से मुस्कराया और उसके कधे पर हल्के से हाथ रखकर दबा दिया ।

"हस्तरेखा पर तुम्हें विश्वास नहीं है न ।" देवीशंकर जैसे उत्तर जानते हुए प्रश्न कर रहे हों। "मैं भी पहले यही सोचता था । गम्भीरता से सोचो तो पता चलता है । कीरो ने लाखों हस्तरेखाओं की तुलना की थी और तब कहीं एक-एक रेखा का अर्थ स्पष्ट किया था ।" देवीशंकर नहीं, जैसे उनके मुँह से रामधन पाण्डे बोल रहे हो ।

वर्मा भीतर से उमडी हुए व्यंग्यपूर्ण हँसी पर बड़ी मुश्किल से काबू पा सका था । देवीशकर की गम्भीरता से एक विनोद मिश्रित दया उसके भीतर उपज आई थी । "यार तुम तो लगे भूमिका बाँधने । साफ-साफ कहो न ।" वर्मा यदि भीतर से उतना आतुर न भी रहा हो तो भी उसके कहने के ढंग से यही लगा ।

देवीशकर ने बहुत ध्यान से वर्मा की ओर घूरा जैसे कुछ भी कहने के पूर्व उसे तौलना चाहते हो । तुरन्त पलके झुका लीं ।

"रामधन पाण्डे को जानते हो ? हाँ वही जो एम.पी. कॉलेज में अग्रेंजी विभाग के अध्यक्ष है । हस्तरेखा देखने में माहिर हैं । कभी तुम भी दिखाओ ।" सडक छोड़कर गली से चलना था । वर्मा ने आगे होकर सड़क पार कर ली और बाये से दायें हो गया । देवीशंकर भी उसके पीछे हो लिए । बिजली के खम्भे के पास पहुँच कर वर्मा क्षण-भर को रुक गया । देवीशंकर पीछे रह गए थे । जब बिल्कुल करीब आ गए तो वह फिर चलने लगा ।

"किराया तो घर का जो भी हो, सुना है मकान-मालकिन कुछ वैसी है ।"

"क्या मतलब ?" देवीशंकर वर्मा से बिल्कुल सट गए ।

"ठीक से तो नहीं जानता । लोगों का कहना ही सुना है कि वह बहुत बदनाम औरत है ।" वर्मा उनकी ओर देखकर मुस्कराया तो प्रतिक्रिया स्वरूप मुस्करा भी नहीं सके । वर्मा का मुस्कराना भी कुछ अजीब सा लगा जैसे कह रहा हो, 'तुम्हें क्या फर्क पडता है ? जैसा तुम चाहते हो वैसा ही तो है । तुम्हें वह घर छोडना खटकेगा नहीं ।'

देवीशंकर खड़े हो गए । आगे बढ़ा ही नहीं गया । "पहले क्यों नही बताया ?"

वर्मा ठहाका मार कर हँस पडा, "तुम मॉरोलिस्टों से भगवान बचाए ।

तुम्हे पकडकर खा डालेगी ? खडे क्यो हो गए ?''

''वेकार चलना है । नही, मै नही चलूँगा ।'' लौट पडे देवीशकर । वर्मा पर भी उन्हे क्रोध आया किन्तु चुप लगा गए ।

''अजीव हाल है ।'' वर्मा उनके पीछे तेजी से मुडा जैसे अभी उन्हे पकड़ कर लौटा ले जाएगा ।

''क्या बात है ? सुन तो ।'' वर्मा अभी कई डग पीछे था । ''रुको तो ।''

वे क्षण भर को ही रुके, ''मुझे गोयल के यहॉ जाना है । कल मिलूँगा ।'' और आगे बढ गए । वर्मा वही खड़ा होकर उन्हें उल्टी दिशा की ओर जाता हुआ घूर रहा है । उन्होने महसूस किया, किन्तु पीछे मुडकर देखा नहीं । बहुत दूर आगे निकल कर ही वे पीछे मुडे थे और वह भी केवल यह देखने के लिए कि वर्मा अभी तक दिख रहा है क्या ?

'अब कहॉ चले ? गोयल के यहॉ जाना बेकार है ।' अकेले होने पर सोचने लगे । थोडी देर पूर्व तक लग रहा था वे भाग रहे है और वर्मा उनका पीछा कर रहा है । अब आश्वस्त हो गए थे किन्तु रुके नही । रुकने का सवाल ही नहीं था । कहीं भी जाने के लिए इस सडक से कुछ दूर तो चलना ही था । सामने से एक ट्रक आता हुआ दीखा तो हडबडाकर एक किनारे हो गए । धूल फेंकता हुआ ट्रक गुजर गया ।

'काश ! एक ट्रक ही अपने पास होता तो कितनी शानदार जिन्दगी होती। पीछे टिन का छप्पर डाल लेते । एक चारपाई, एक स्टोव, कुछ किताबें । जहाँ ट्रक रुक गया वही सॉझ । जहॉ से ट्रक चल दिया वही सवेरा ।' यह सुखद कल्पना उन्हे कवियो की कल्पना जैसी लगी । तुरन्त एहसास हो आया कि वे ट्रक नहीं खरीद सकते और वर्मा का व्यवहार उन्हें बुरा लगने लगा । शायद शुरू से ही उसका इरादा बेवकूफ बनाने का रहा हो । किसी की बात को वह गम्भीरतापूर्वक नहीं लेता । अच्छा ही किया जो उसे सारी बातें नहीं बताई नहीं तो इसका भी मजाक उड़ाता । जिस पर गुजरती है उसे ही पता चलता । दूसरों को क्या ?

चौराहा आया तो ठिठक गए । गोयल के घर जाने के लिए दाईं ओर मुडना होगा । उन्होंने केवल उस ओर देखा भर जैसे उसके साथ ही हर रास्ते की सार्थकता पूछ रहे हों । कहॉ क्या है ? कुछ निश्चित नही है । सीधे अपने घर की ओर मुड गये । रास्ते में ही होटल मे रुककर खाना खा लेंगे । कमरे पर चलकर सो जायेंगे । यदि बहुत तबियत ऊवी तो कोई पिक्चर देख लेगे । कौन-सी पिक्चर ? उन्होंने शहर की एक-एक टाकीज के पिक्चरों का नाम दुहराया । अकेले ठीक नहीं रहेगा । बलराज शायद चले । बलराज से कोई शिकायत नहीं, किन्तु बलराज की पत्नी ? पता नहीं उसने अब तक बलराज से क्या लगा-बझा दिया हो। कुछ तो कहा ही होगा । आशा के विचार मात्र से मन विषाक्त हो आया । सिहर उठे जैसे ज्वर चढने लगा हो । एक से एक भयानक सम्भावनाएँ । हो सकता हैं

उसने अब तक उनके ऊपर कोई आरोप मढ़ दिया हो । इस विचार के साथ ही वे फिर काँप गए । उन्हें लगा कि आशा ने बलराज को भर दिया है और बलराज उनकी प्रतीक्षा कर रहा है कि जैसे ही वे घर में घुसें वह उनका कान पकड कर बाहर कर दे। आशा भी यही देखना चाहती है । उनकी उपस्थिति सभी के मन में चुभती है ।

उन्हें लगा आज ही से नहीं, उनकी उपस्थिति उस घर में एक लम्बे अर्से से सभी के मन में चुभती रही है । सभी उनसे घृणा करते रहे है । यह तो उनकी ही बेहयाई रही है जो इतने अपमान के बावजूद उस में पडे रहे । उन्हें कभी का घर छोड देना चाहिए था । अपना ही व्यक्तित्व उन्हें एक अपाहिज और कोढी के समान लगने लगा जो एक दरवाजे पर पड़ा है तो उठा नहीं जाता । सभी थूक रहे है ।

होटल के सामने पहुँचकर रुक गए । रविवार के दिन खाने की कुछ अतिरिक्त व्यवस्था होती है । उन्होने मैनेजर से पूछा भी, "आज क्या बनवाया है ?"

"खीर, पुलाव, आलू-मटर "

"खाना नहीं खाऊँगा । पानी पिला दो एक गिलास ।"

"क्यों साहब ? तबियत ठीक नहीं है क्या ?"

"हूँ कुछ पेट में गड़बडी हो गई है ।"

"बहुत उतर गए हैं आप । आपका चेहरा देखकर ही मै भाँप गया था ।"

बहुत रुक-रुक कर पानी पीते रहे । एक-एक घूँट जैसे चबा रहे हो । मैनेजर अपनी कुर्सी पर बैठा दूसरे ग्राहक से बात कर रहा था । पहाडी बैरा एक मेज से दूसरी मेज के इर्द-गिर्द चक्कर मार रहा था । खाना खाने वालों में कोई निकट का परिचित नहीं था । नहीं तो कुछ बात ही करते । मिश्रा मिल जाता तो ठीक था । बैरा को बुलाकर गिलास पकड़ा दिया।

कुर्सी छोड़कर उठे तो मैनेजर से कहते गए, "ठीक हो जाऊँगा । कल तक तो बिलकुल ठीक हो जाऊँगा ।" पता नहीं इस प्रकार किसे आश्वस्त करना चाहते थे । स्वयं को अथवा मैनेजर को ?

यदि सड़क छोड़कर सीधे गली से चलते तो घर बहुत दूर नहीं था, किन्तु गली की ओर मुड़े ही नहीं । सड़क से ही चलते रहे । मन ही मन चाहने लगे थे कि यह रास्ता कुछ और लम्बा होता। इस रास्ते का कभी अन्त नहीं होता । अच्छा मान लें यदि घर पर नहीं जाएँ तो ? कहाँ जाएँगें ? दुनिया बहुत लम्बी-चौड़ी है। खाने-पीने भर को कहीं कमा लेंगे । यही अच्छा है कि इस नगर को ही छोड़ दिया जाये । आखिर यदि इस घर को छोड कर भी इस नगर में रहेंगे तो लोग तो मिलेंगे ही । घर छोड़ने से समस्या सुलझ नहीं सकती । नगर छोडना ही पड़ेगा । ठीक है ठीक है ।

अचानक ही अपनी आवाज सुनकर वे चौंक गये । उन्हे दुख हुआ कि वे

पागलो की तरह जोर से बोलने लगे थे । उन्होंने पीछे मुडकर देखा और अपने को अकेला पाकर सन्तुष्ट हो गये ।

पान वाले की दुकान पर पहुँचे तो उन्हें एहसास हुआ कि अब वे अपने घर के बिल्कुल करीब आ गये हैं । फिर सिहर उठे । मन मे आया कि यही से लौट चले । सम्भावित अपमान का नाग जैसे रास्ता रोक कर खड़ा हो गया हो 'इधर कहाँ चले ?'

हर अगले डग पर नाग उन्हे डसने लगा था और वे विष झेलते हुए श्लथ होते जा रहे थे ।

अपने कमरे पर पहुँचे थे तो बिल्कुल सन्नाटा था । बलराज और आशा अपने कमरे में थे । बिमला शायद सो गई थी । बहुत आहिस्ते से उन्होंने अपने कमरे का दरवाजा खोला था और चोर की तरह दबे पॉव कमरे में घुस कर भीतर से दरवाजा बन्द कर लिया था । बिना कपडे उतारे ही चारपाई पर भहरा पडे । कुछ देर तक निश्चल पडे रहे । फिर क्षण-क्षण आँकने लगे । शायद बलराज या आशा कोई अभी यहॉ आये । कुछ देर बीत जाने पर किसी का भी नही आना उन्हें बुरा लगने लगा । कितनी उपेक्षा होती है उनकी । उन दोनो को अवश्य पता चल गया होगा फिर भी टालना चाहते हैं । कितने भी धीमे से दरवाजा खोलो आवाज तो होती है ।

वे चारपाई छोड़कर उठ गये । कपड़े बदले और जोर से खॉसते हुए दरवाजा खोलकर बाहर आ गये ।

बलराज भी बाहर निकल आया "आ गए शकर !" और मुस्कराया तो देवीशंकर को वह आत्मीयता नही दिखाई पडी । उन्हें लगा कि बलराज मुस्कराकर परोक्ष रूप से जता रहा है कि, 'तुम कितने कमीने हो ।' बलराज की ओर देखा भी नहीं गया उनसे ।

"कहाँ चले गये थे ।" उसने और निकट आकर पूछा ।

वे डर गए । शायद गला पकड़ने के लिए निकट आ रहा हे । यह सब सहनशीलता का ढोंग है ।

"वर्मा के यहॉ चला गया था ।" कह कर वे रुके नहीं । भीतर कमरे में चले आये । बलराज भी उनके पीछे-पीछे चला आया और कुर्सी खींचकर बैठ गया।

"वर्मा के घर पर ?" बलराज जैसे बात करना चाहता हो ।

गलती हो गई । वर्मा से घर छोडने की चर्चा नही चलानी थी । वह अवश्य बलराज से पूछेगा । बहुत बडी भूल हुई । वे पछताने लगे । अब क्या करे ? अच्छा हो कि वे वर्मा के कुछ कहने के पूर्व स्वय कह दे । हाँ, यही ठीक रहेगा। उन्होंने निश्चय किया । "हाँ घर पर ही था । उसके साथ अपने लिये एक घर देखने जा रहा था, नही गया ।" उन्होने प्रयत्न किया वे मुस्कराकर इस बात को हल्का कर दें ।

"घर !" बलराज चौक गया । "यहॉ से छोड रहे हो ?"

"बात यह है कि " कहते-कहते रुक गये ।

"बात यह है कि " दुबारा उन्होने फिर साहस किया । "मेरी वजह से तुम लोगो को तकलीफ होती है ।" उन्होंने अपनी गदोरी खोल ली थी । तमाम रेखाओ के बीच एक रेखा । माउण्ट ऑफ वीनस से भाग्य को मिलाती हुई एक टूटी रेखा।

"यह किस ने कहा है ?" बलराज बहुत गम्भीर हो गया। पुराना स्नेह जाग उठा । उनकी दृष्टि अपनी हस्तरेखाओ पर ही गड़ी रही जैसे रामधन पाण्डे की एक-एक बात पढ़ रहे हों, 'इन रेखाओं के विरोध मे लडना बहुत कठिन होता है । अक्सर मनुष्य इन रेखाओं के वशवर्ती होकर यन्त्र की भाँति चलता रहता है । जो बहुत संघर्ष करते हैं वही निकल पाते हैं । वही बदल पाते हैं अपनी रेखाओ को ।'

"तुम जब बाजार गए थे, यहाँ रामधन पाण्डे आए थे ।"

"हूँ," बलराज ने कोई जिज्ञासा नहीं प्रकट की तो बुझ गए । क्षण भर पूर्व का निश्चय तत्काल बदल गया।

बलराज से सब कुछ बताकर अपना मन हल्का कर लेने का विचार उसकी गम्भीरता के सामने नही टिक सका । उन्हें आश्चर्य हुआ कि कैसे वे पुनः अपनी स्थिति सुनाने चले थे ? बलराज की व्यवहारिक मृदुता तो केवल संकोचवश है । साहस नहीं है । नहीं तो साफ-साफ कह देता । उन्हें लगा कि वे फिर उसी बेहयाई को दुहराने जा रहे थे । तमाम लोग दूर से चिढाने लगे ।

"सुनो ! मैं इस घर में नहीं रहूँगा ।" सर चकरा गया । लगा अभी रो पड़ेंगे ।

बलराज ने प्रत्युत्तर मे कुछ नहीं कहा । वह वैसे ही गम्भीर मुद्रा में बैठा कुछ सोचता हुआ सा लगा। देवीशंकर सुलग उठे । सोचा बलराज को पकड़ कर जोर से झकझोर दे । जोर-जोर से चीख कर कहें, 'तुम मेरा गला घोंटना चाहते हो तो गला घोंट दो । तुम्हारी पत्नी ने जो कुछ कहा है उस पर तुम भी विश्वास करते हो न ?' किन्तु यह सब कुछ उनसे नही हुआ । वे फूट पड़े ।

"मेरा दोष नहीं है । मेरा कुछ भी दोष नहीं है । तुम्हारी पत्नी ने तुम से जो कुछ कहा है गलत कहा है । वही छेड़ती है मुझे । वही बदनाम करती है। वही ।"

देवीशंकर क्या कह रहे हैं ? उन्हें स्वयं नहीं पता चला । उन्हें हल्का-सा आभास हुआ कि आशा उनकी ऑखों के सामने खड़ी है और कह रही है कि 'देवीशंकर तुम झूठ बोल रहे हो । मैं आज तक तुम्हें अपने सच्चे देवर की तरह मानती रही और तुम मुझे कलंकित कर रहे हो ? मुझे ?'

देवीशंकर बेहोश होकर चारपाई पर गिर पड़े । जब भी होश मे आते अजीब ऊट-पटांग बातें करते ।

कुछ दिनों तक लोग कहते रहे कि देवीशंकर का पागलपन एक ढोंग है। किन्तु अब कोई नही कहता ।

●

लगाव

उसने बरामदे की बत्ती बुझा दी और कुछ देर तक वही बरामदे मे खडी सामने सडक की ओर देखती रही । सड़क के किनारे जलती हुई बिजली की रोशनी बरामदे के अंधेरे के साथ उसे आवश्यक लगी । कितना विरोधी तथ्य है ? हम अधेरे में रहकर भी दूसरी वस्तुओं को देख सकते हैं । प्रकाश दर्शन के लिए नही दृश्य के लिए चाहिए । उसे लगा वह इस छोटी-सी बात का कोई बहुत ही असाधारण अर्थ पा गई है । जिसका इस क्षण के साथ गहरा लगाव है । सडक सूनी थी । केवल प्रकाश की कुछ चित्तियॉ इधर-उधर पड रही थी। ढेर सारे पतंगे बल्व के चारो ओर फुलझडी से निकलते प्रकाश के दानो की तरह उड रहे थे ।

वह अपनी जगह से दो डग और आगे बढ कर सीढ़ियो के पास हो गई। बरामदे के खम्भे से हाथ टेककर सीढी के दो पाए एक ही बार उतर आई । लॉन की हरी घास पर पाँव रखते हुए उसे गुदगुदी हुई । मन मे तो आया कि यही घास पर क्षण भर बैठ ले, किन्तु कीड़े-मकोड़े के डर से साहस नहीं हुआ । घास थी भी नम । सबेरे बारिश हुई थी । दोपहर के बाद भी बारिश हुई थी । अखिलेश दफ्तर से यहाँ पहुँचते-पहुॅचते बिल्कुल भींग गया था । उसकी आँखें स्वतः एक बार आसमान की ओर उठीं । अभी बादल है । छिटपुट एक-दो तारे कहीं-कहीं दिखाई पडे । शायद रात में भी बारिश आए। कितनी उमस है ? लॉन के फाटक की ओर कुछ और आगे बढ़ गई । रात में यदि बारिश आई तो चारपाई भीतर करनी पड़ेगी। पता नहीं किस बेवकूफ ने इस घर का नक्शा बनाया था ? यदि भीतर की ओर भी बरामदा होता तो कितना अच्छा था । बौछार सीधी कमरे में नहीं आती । यदि वह चाहती तो बरामदे मे चारपाई डालकर सो भी रहती । इस घर का एक-एक अभाव उसकी झुंझलाहट को तीखा करता । सामने से देखने पर कितना शानदार बंगला लगता है और भीतर से इतना उजाड जैसे यह घर आदमी के लिए नहीं कबूतरों को रहने के लिए बनाया गया हो । उसने कभी ऐसे घर के विषय में सोचा भी नही था और यही कब सोचा था कि अखिलेश विवाह के पश्चात इतना बदल जायेगा ।

इस बीच वह बरामदे की सीढ़ियों से लेकर लॉन के फाटक तक दो चक्कर काट चुकी है । अब तो किसी तरह रहना ही पडेगा । उसने अपनी दाई मुट्ठी को बाई हथेली पर दवाते हुए भीतर एक विवशता का दबाव महसूस किया ।

ऑगन में अखिलेश ने चारपाई खीची तो खडखडाहट की आवाज बुरी लगी । पता नही क्यों किरकिराहट से उसके रोम-रोम खडे हो जाते है जैसे ईंट पर बालू रखकर कोई ईंट से रगड रहा हो । सब ठीक हो जायेगा । किन्तु लगता है यह कभी नहीं ठीक होगा । वह रजनीगंधा के पास आकर खड़ी हो गई, जेसे क्षण भर पूर्व की गिनगिनाहट को रजनीगंधा के गध से सहला रही हो ।

घण्टी बजाता हुआ कोई साइकिल वाला सडक से गुजरा और जब साइकिल आगे निकल गई तो वह मुस्कराई । कैसे तो देख रहा था ? अंधेरे में देखता क्या अपने को दिखा रहा था । औरत की परछाई में एक रगीन और खूबसूरत ख्याल उसके मन में उठा होगा। उसे घण्टी की अनुगूँज में कॉलेज के लड़को की सीटी जैसी धुन सुनाई पडी । कितने ही चेहरे—विजय, गिरीश, ओम, अखिलेश

"अरे गिरिजा ! एक गिलास पानी तो पिला दे ।"

अखिलेश की रेगती आवाज । गिरिजा का पढ़ना छोडकर चारपाई से तुरन्त उटने की आवाज । गिलास में पानी के गिरने की आवाज । उँह ! अपाहिज स्वयं उठकर पानी तक नही ले सकता। उसने रजनीगंधा के फूलो का एक गुच्छा तोड़कर अपनी गदोरी पर रखकर चुटकी से मसल दिया । फ़िर पिसे हुए फूलों को फेंक दिया । अधेरे में ही अपनी गदोरी को महका । पिसकर फूल का रंग कितना बदल गया। वह तो पराग है जो महकता है । पंखुड़ियों मे केवल रग होता है और पिस जाने पर वह भी नहीं रहता । अचानक ही वह बहुत गम्भीर हो गयी । जैसे वह स्वयं पिसकर निर्गन्ध हो गई हो और अखिलेश भी उसे फेंकना चाहता हो । उसे लगा कि घण्टे भर पहले की बात अब तक मँडरा रही है । घण्टे भर पहले ही की क्यों ? रोज-रोज की बात । आज कुछ नया तो नहीं हुआ ।

उसे अखिलेश का भ्रम हुआ था और उस भ्रम के टूटने के साथ ही उसका कॉप गया मन भी स्थिर हो गया । गिरिजा थी । बाहर बरामदे में खडी उसे ही घूर रही थी । एकाएक वह जब मुडी थी तो उसे केवल परछायी सी दीखी थी ।

"देवा भाभी ! दस बज गए ।"

"चलती हूँ !" अपनी आवाज का रूखापन उसे स्वयं बुरा लगा । पछतावा भी तुरन्त हुआ । न जाने क्यो उसे गिरिजा को देखते ही लगा था जैसे वह एक गुप्तचर की भाँति उसके पीछे लगी है कि उसकी भाभी कही भाग न जाये।

गिरिजा भी लॉन में उतर आई ।

"भाभी ! तुम्हीं बता दो न, भइया से पूछा तो कुछ बोलते ही नही । कल टीचर जी क्लास मे पहुँचते ही पूछेगी । रम्मू दादा को आता ही नही ।"

"चलो," घर की दालान में पैर रखते हुए उसे लगा कि अब तक बाहर वह केवल इसी की प्रतीक्षा कर रही थी कि कोई उसे बुलाता । किसी को तो उसकी आवश्यकता महसूस होती है। अखिलेश को शायद अब नहीं रही । कुछ दिनों पहले मेरी एक क्षण की अनुपस्थिति से वह व्यग्र हो उठता था और अब ?

गिरिजा को पढाकर जब वह उठी तो एक बार कनखियों से उसने अखिलेश की ओर देखा। वह अव तक सोया नहीं था । चारपाई की पाटी पर उझका हुआ धरती घूर रहा था । जी में आया तो कि पूछे, 'क्या सोच रहे हो ? नींद नहीं आ रही है ?' किन्तु चुप लगा गई । उसे अपने भीतर उठा प्रश्न बार-बार दुहराया हुआ लगा जिसकी अपनी कोई सार्थकता नहीं रही । यह प्रश्न उठा ही क्यों ? उसे अपने ही ऊपर ग्लानि हो आयी । ठीक है यदि अखिलेश तन सकता है तो वह भी तन सकती है और वैसे भी आवश्यक नहीं कि जब अखिलेश रूठे तभी वह रूठ जाये । यह तो एक प्रकार से उसके ही आश्रित होना हुआ । जब अखिलेश दुःखी वह दुःखी । अखिलेश सुखी वह सुखी । नहीं, उसने विरोध किया । उसे प्रसन्न रहना चाहिए । वह अखिलेश के सिरहाने पडा गिलास उठाती हुई झूट-मूठ खिलखिला पड़ी, "अरे गिरिजा बीबी इस गिलास को उठा के रख दिया होता । रात भर कोई इससे पानी ही थोड़े पीता रहेगा ।"

गिरिजा मुस्कराती हुई बाहर निकली तो उसे लगा कि उसका अभिनय सफल हो गया । अखिलेश ने भी चौंक कर उसकी ओर देखा और चारपाई पर सीधे होकर लेट गया। कुछ कहा नही । वह एक फिल्मी गीत गुनगुनाती हुई अखिलेश की चारपाई के पास बिछी अपनी चारपाई पर चादर ठीक करने लगी । "तुम भी बत्ती बुझाकर सो जाओ । सबेरे जगा दूँगी । ठीक है न !" अन्तिम बात पर बल देते हुए गिरिजा की ओर मुड़ गई ।

"रम्मू दादा भी सो गए ।"

"तुम भी सो जाओ न ! दरवाजा देख लेना ।" और वह मुस्कराई । गिरिजा वहाँ से हटी तो उसने साडी के आँचल को झाड़ा जैसे यह भी बिस्तर का चादर हो । अपनी बँधी चोटी को खोलकर बालों को बिखर जाने दिया। चारपाई पर लेटी तो इतना फैलकर और लापरवाही के साथ जैसे सुख ने विस्तार पा लिया हो । बिना अखिलेश की ओर देखे ही उसने महसूस किया कि अखिलेश उसकी ओर बहुत गहरी और उदास आँखों से देख रहा है । शायद उसे देवा की इस तरह की लापरवाह खुशी अच्छी नहीं लग रही है । 'घुटो खूब घुटो ।' देवा को एक प्रकार का क्रूर संतोष हुआ । वह लेटे-लेटे फिर फिल्मी धुन गुनगुनाने लगी ।

"क्यों ? तुम्हें नींद नहीं आ रही है ?" अखिलेश का प्रश्न जैसे उसने सुना ही नहीं । चिहुँकने का अभिनय करते हुए उसने मुड़कर एक बार उसकी ओर उपेक्षा से देखा और वह भी इस आशा से कि यदि अखिलेश ने पुनः इसी प्रश्न को दुहराया तो वह इसका बहुत ही जहरीला उत्तर देगी । किन्तु अखिलेश ने कुछ नहीं पूछा तो वह भीतर से और भी सुलग उठी । उसे लगा कि अखिलेश फिर बाजी मार ले गया । उसका प्रतिहिंसात्मक सुख एक प्रश्न के हल्के दबाव को भी नहीं सह सका । वह पुनः एक बार मुस्कराई और उत्फुल चंचलता को सायास अपनी आवाज में भरती हुई गिरिजा से ही वोली, "बीबी ! बत्ती बुझा दो ।"

कमरे की वत्ती बुझी तो आँगन में भी अँधेरा हो गया । "देवा भाभी मुझे

सबेरे जगा देना ।'' गिरिजा एक बगल आकर दूसरी चारपाई पर पड गई ।

''कहो तो अभी जगा दूँ ।'' वह जोर से हँस पडी जैसे कोई बहुत बड़ी हास्यजनक बात कह गई हो ।

गिरिजा भी हँसी, ''अभी तो जगी ही हूँ ।''

''गिरिजा चुप रहती है कि नहीं ?'' अखिलेख चीख पड़ा ।

गिरिजा काँप गई । देवा से भी कोई प्रतिकार तुरन्त नहीं लिया जा सका। कुछ रुककर ही वह कह सकी, ''चुप हो जा बीबी ! जो खाना खिलाता है न उसे अधिकार है कि तुम्हारे होठों को जब चाहे सिल दे ।''

''उफ !'' अखिलेश ने इससे अधिक कुछ नहीं कहा । करवट बदल कर दूसरी ओर मुँह फेर लिया ।

देवा को लगा उसका प्रतिघात व्यर्थ नहीं होने पर भी उसे सन्तुष्ट नहीं कर सका । अपने व्यंग्य के तीखेपन को वह स्वयं झेलने लगी ।

उसे भी कहीं नौकरी कर लेनी चाहिए । रोज-रोज का यह झगड़ा अब नहीं सहा जा सकता । अच्छा तो हो कि वह इस नगर को छोड़कर बाहर कहीं चली जाए । ग्वालियर यदि वह प्रयत्न करे तो आसानी से नौकरी मिल जाएगी ।

केवल पिताजी को एक पत्र डालकर अपनी स्थिति खोलकर लिख देनी होगी बस । वह मन ही मन पत्र का मसौदा तैयार करने लगी । लिख देगी 'अखिलेश के साथ निर्वाह होना कठिन है । बात-बात पर उलझता है । कहता है, मैंने ही उसकी जिन्दगी तबाह कर दी नहीं तो वह न जाने क्या होता । इसकी दृष्टि में मैं केवल उसके मार्ग की एक बाधा हूँ ।'

पहले तो मेरी हर पसन्द उसकी पसन्द थी । खाने-पीने से लेकर पहनने-ओढ़ने तक । और अब शायद ही कोई बात हो जहाँ दोनों रुचियों में अन्तर नहीं दिखाई पड़े । आज कद्दू की सब्जी बनाई थी तो थाली उठाकर पटक दिया और जितनी बातें सुनने को मिलीं शायद कभी नहीं सुनी थीं । ऐसा नहीं कि यह एक दिन की बात हो । रोज कुछ न कुछ । ठीक से कभी नहीं बोलता

नहीं यह सब कुछ लिखना उचित नहीं होगा। करवट बदल कर दूसरी ओर की पाटी को अपनी ऊँगलियों से सहलानें लगी जैसे अब तक की लिखी बातो के ऊपर रोशनाई फैला रही हो । वे सोचेंगे कि अन्ततः उन्हीं की बात सच निकली। उन्होंने तो पहले ही विरोध किया था किन्तु वही जिद्द कर गई ।

उन दिनों उस पर एक अजीब.सा भूत सवार था । सारी दुनिया सिमट कर छोटी हो गई थी । अखिलेश, केवल अखिलेश और कुछ नहीं । और सब झूठ-भ्रम । मात्र एक सत्य । अखिलेश के एक इशारे पर वह कुछ भी कर सकती थी और किया ही है ।

''आह !'' कैसे तो आवाज निकल ही गई । अपने ही ऊपर वश नहीं रहा। करवट बदल कर सीधी हो गई । अखिलेश के हिलते हुए पैर से उसने अनुमान लगाया कि अभी तक जग रहा है । संकोच से वह बुझ सी गई । कहीं वह

कुछ गलत अर्थ न समझ बैठे । उसने पुनः दुहराया आ आऽ जिससे लगे कि वह जम्हाई ले रही हैं । दोनों बाहें सिरहाने की ओर खींचकर अपने समूचे शरीर को तान लिया । "आह ! बडी उमस है ।" जैसे अखिलेश से अधिक अपने को आश्वस्त कर रही हो कि आह की सार्थकता मात्र उमस है और कुछ नहीं ।

तत्काल उसे अपने ऊपर ग्लानि हो आई । इतना स्वांग भरने की आवश्यकता भी क्या ? प्रति पग अपने को ही छलना । कितनी कायरता उसमें भर गई है । अपनी अन्तरात्मा को मारकर जीने से लाभ भी क्या है ? वह इस नगर को छोडना चाहती है । इस कारावास से मुक्त होना चाहती है । अखिलेश भी यही चाहता है । साहस का अभाव है । इस अभाव की चेतना ने उसे झकझोर दिया । जो नहीं है उसे जनना होगा । अपने लिए साहस भी वही जनेगी । नहीं जायेगी नगर छोडकर । यहीं, इसी नगर में अखिलेश की ऑखों के सामने वह नौकरी करेगी । साथ नहीं रहकर हॉस्टल में रह लेगी । साथ तो किसी दशा में नहीं रहेगी और एक बहुत ही घुटन भरी कल्पना में वह खो गई ।

अखिलेश से अलग इसी नगर में वह एक बँगले में ठहरी हुई है । अखिलेश उसके घर मिलने आता है तो वह इतनी व्यस्त रहती है कि समय नहीं मिलता । वह उसे निराश लौटता हुआ देखती है और मुस्कराती है । रास्ते में कभी-कभी दोनों मिल जाते हैं । वह कार पर होती है और अखिलेश अपनी साइकिल पर । अखिलेश कुछ कहने को उसकी ओर लपकता है तब तक उसके कार की गति तेज हो जाती है । आगे निकलकर वह कार की खिडकी से मुँह बाहर निकालकर पीछे की ओर देखती है । उदास, उद्विग्न, पछताता-सा अखिलेश उसे हर मोड पर मिलता है और वह उसे दुःखी देखकर प्रसन्न होती है। उसकी साड़ी का रंग कुछ और चमकीला होता है । उसकी आकृति पर लावण्य की एक हल्की तह और जम गई रहती है । बेचारा !

अखिलेश अचानक चारपाई से उठा तो उसकी दोनों टाँगें भी खिंच गई। भीतर कहीं उसे झटका सा लगा जैसे उसकी कार अचानक किसी पहाड के सामने आ गई हो और जल्दी में ब्रेक लगाने के कारण अगले दोनों पहिए ऊपर उठ गए हों ।

वह चारपाई से उतरकर दालान की ओर बढ़ गया । बाहर का दरवाजा खुलने की आवाज सुनकर वह कुछ चौंकी । जा कहाँ रहा है ? मन में तो आया कि पीछे-पीछे जाकर देखे किन्तु उठी नहीं । ठीक है, जो जी में आए करे । रात भर की बात है । कल प्रयत्न करके देखूँगी । दयानन्द बालिका महाविद्यालय की प्रिंसिपल से मैं ही बात करूँ । शायद अभी स्थान खाली हो । पहले ही जब प्रिंसिपल ने कहा था स्वीकार कर लेती तो आज यह स्थिति नहीं होती । अखिलेश की बातों के चक्कर में आ गई थी । 'घर कौन देखेगा ?' अब यदि उसने कहा तो साफ कह दूँगी, 'तुम देखो, तुम्हारा घर है । मैं कोई खरीदी हुई बाँदी नहीं हूँ। मैं भी धन कमा सकती हूँ । मैं नहीं रहती इस घर में । बहुत गुमान है न अपने रुपये

पर । अपने पास रखो । नहीं चाहिए मुझे तुम्हारा दिया अन्न । तुम्हारी खरीदी साड़ी। मैं अपाहिज नहीं हूँ ।'

उसने अपने दोनों हाथो की उँगलियों को एक-दूसरे मे फँसाकर पीछे की ओर गर्दन पर टेक लिया और कुछ आगे को उठ गई । सामने आकाश की ओर घूरते हुए कितना समय बीत गया उसे ध्यान ही नहीं रहा और जब सचेत हुई तो उसे लगा कि वह कुछ सोच भी नहीं रही थी । केवल निरुद्देश्य एक टक सामने आकाश घूरती रही थी । भीतर एक बेचैन सूनापन-सा महसूस हुआ ।

उसे लगा कि यह सूनापन भी नया नहीं है । अक्सर ऐसा हो जाता है । भविष्य की कितनी मधुर कल्पनाएँ उसने कीं थी । शायद यह सब उसी का दण्ड है । पता नहीं पूर्व जन्म में कोई अपराध किया हो । जो हो अब तो भोगना ही पड़ेगा।

गिरिजा की खाँसी उपट आई । पहले तो नींद में धीरे-धीरे 'खों खो ' करती और मुँह चुभलाती रही किन्तु जब बहुत तेज हुई तो नींद भी टूट गई । वह उठकर चारपाई पर बैठ गई । उसकी चारपाई पर चली गई और उसकी पीठ सहलाने लगी, "कल अस्पताल में चलकर दिखा देगे । अभी से इस तरह की खाँसी अच्छी नहीं ।" गिरिजा पर अचानक इतनी दया क्यों फूट पड़ी वह स्वयं नही समझ सकी । यदि कहीं ऐसा होता कि रोग को भी कपड़े की तरह बदला जा सकता तो वह गिरिजा की खाँसी नहीं ले लेती ? हाँ उसी को चाहिए इस तरह के रोग । इससे भी भयानक रोग जो उसकी जिन्दगी के दिन घटा सकें ।

गिरिजा की खाँसी रुक गई । वह मुँह धोकर फिर लेटने लगी तभी उसकी नजर अखिलेश की सूनी चारपाई की ओर मुड़ गई, "भाभी ! भइया कहाँ गए ?"

उसने कोई उत्तर नहीं दिया तो फिर गिरजा ने वही प्रश्न दुहराया और उठकर उसके पास चली आई ।

"बताओ न, कहाँ गए है ?" गिरिजा ने आग्रह से उसके दोनों कन्धे झकझोर दिए ।

"मैं क्या जानूँ ? बाहर गए होंगे ?" देवा की आवाज में इतनी कुढन थी कि उसे अधिक पूछने का साहस नहीं हुआ । चुपचाप उठकर बाहर बरामदा देखा, लॉन देखा और जब वह कहीं नहीं दिखाई पड़ा तो सहमी हुई लौट आई ।

"बाहर तो नहीं है । कहाँ गए ?"

"बाहर नहीं है ?" वह भी डर गई । सोचती थी कि बाहर लॉन में घूम रहा होगा । "तो कहाँ चला गया ?"

"रम्मू दादा को जगा दूँ ?"

"क्यों ? कोई चार साल का बच्चा तो नहीं जो कहीं गुम हो जाए । चाय पीने चौराहे पर गए होंगे । अग्रवाल के यहाँ चले गए होंगे ।" आवेश और झुँझलाहट में अपने ऊपर वश नहीं रहा । आवाज कुछ लड़खडाने लगी । मुख

उदास हो आया । मन के भीतर का ज्वार आँखो से चू पड़ने को हुआ किन्तु दहुत बलपूर्वक उसे दबाए रहो ।

पूरव आकाश मे बिजली की एक पतली वलखाती लकीर चमकी । उसने गिरिजा की बाँह थाम कर तुरन्त छोड दिया । "तुम सो जाओ बीबी । तुम्हे सवेरे उठना है । अभी आते होगे । मै देखती हूँ ।" और वह वहाँ से हट गई ।

लॉन में अँधेरा बढ गया था । सडक की बत्ती पर पतगे कुछ कम हो गए थे । क्षण भर बरामदे में खडी वह सामने घूरती रही । तुरन्त उसे लगा उसका यो चिन्तित होना व्यर्थ है । चौराहे तक गया होता तो अब तक लौट आता । अग्रवाल के ही यहाँ होगा । किरन से मीठी बाते कर रहा होगा । किरन का ध्यान आते ही उसे अपने भीतर ईर्ष्या की चुभन महसूस हुई ।

'चुड़ैल ।' यह बरामदे में उतर आई । आँचल खींचकर उसने ललाट का पसीना पोंछा । बगल से ब्लाउज के नीचे हाथ ले जाकर पीठ खुजलाती हुई टहलने लगी ।

अब वह किसी भी दशा मे इस घर में नहीं रह सकती । वह टहलती हुई लॉन के फाटक तक आ गई । उसे बहुत पहले ही सचेत हो जाना चाहिए था । किरन के सामने कितना मृदुभाषी हो जाता है । सारी कटुता मेरे ही लिए है । क्यों नहीं आज चलकर देख ही लूँ । उसने निर्णय लिया ।

बिना अपनी आँखों देखे कुछ कह भी तो नहीं सकती । यदि कहीं संदेह सत्य हुआ तो वह उन दोनो का गला घोंट देगी । फाँसी होगी, यही न ! तो क्या होगा ? इस तरह घुट-घुट कर जीने से मौत हजार गुनी अच्छी है । सड़क पर पहुँचकर कुछ झिझक हुई । वह एक पल के लिए खडी रह गई । नंगे पैर जाना ठीक भी नहीं रहेगा । उसे लगा कि उसके पाँवों में चलने की शक्ति ही नहीं । उसके हाथ इतने कमजोर हैं कि वह किसी का गला नहीं घोंट सकती । वह लॉन में वापस लौट आई और एक किनारे घास पर बैठ गई । नहीं रोक सकी अपने को। चुपचाप अपने दोनों घुटनो पर ठुड्डी रखे आँसुओ को बहने दिया ।

"भाभी यहाँ क्यो बैठी हो ? घर में चलो, मैं देखता हूँ ।" रम्मू की बगल में गिरिजा भी खड़ी थी । उसने निकल कर उसका हाथ पकड कर उठाया तो विरोध भी नहीं किया जा सका । उसके पैर सीधे नहीं पड़ रहे थे । बहुत संभाला अपने को । लगता था अभी गिरिजा के कन्धों पर अपना सर रखकर फूट पडेगी। चारपाई पर पडी भी तो निःशक्त । गिरिजा कुछ कह रही है किन्तु क्या, यह उसने नहीं सुना ।

क्या होगा ऐसी जिन्दगी को जीकर ? क्यों नहीं वह आत्महत्या कर ले ? बहुत से उपाय हैं । वह अपनी कानी उँगली में पड़ी विवाह में मिली अँगूठी को होंठों के बीच दबाकर चूसने लगी जैसे इस अँगूठी में जहर हो ।

और नहीं कुछ तो अभी वह धीरे से इस घर की चाहरदीवारी फाँद कर कुँए तक जा सकती है । यही अच्छा भी रहेगा । किसी को खबर तक नहीं होगी।

कल्पित मृत्यु-भय से वह सिहर उठी । एक-एक वस्तु से ममता जाग पड़ी । तमाम साडियाँ और वह नीली वाली जो बॉक्स मे पडी है कौन पहनेगी ? उसके इतने सारे गहने ! उसका सिंगारदान । उसकी घडी । नया-नया खरीदा हुआ उसका पर्स !

सब माया है । एक वह इन सारी वस्तुओ की उसे क्या चिन्ता ? उसने गिरिजा की ओर कुछ ऐसे देखा जैसे मरने के पूर्व अपनी सारी वस्तुएँ सौंप जाना चाहती हो ।

यदि अवसर होता तो सबको एक-एक पत्र लिखती । माता-पिता को, भइया को, सोना को, ओम को

ओम का ध्यान आते ही उसे कल्पित मृत्यु की पीडा कुछ कम होने लगी। उसे लगा इस समय भी कही बहुत निकट से ओम याचना भरी दृष्टि लिए उसकी ओर घूर रहा है ।

अब बचा ही क्या ? अगले जन्म में यदि पुनः लौटना हुआ तो शायद कुछ प्रतिदान कर सकूँ । तुमने मुझे सम्पूर्ण मन से प्यार किया और मैं ? उसे लगा एक अर्से से यह प्रश्न उसके सामने टँगा हुआ है और इसका कोई भी उत्तर उसके पास नही है ।

"भइया आ गए ।" गिरिजा बाहर की आवाज आँकती हुई चारपाई से उठकर दालान की ओर बढ़ गई ।

देवा ने जैसे सुना ही नहीं, निश्चल बनी रही जैसे आकाश के तारों की पदचाप अखिलेश की आवाज से अधिक स्पष्ट हो ।

"परेशान होने की क्या बात है । मैं कोई अबोध बच्चा तो नहीं हूँ ।"

शायद उसे ही सुना रहा है अखिलेश । यहाँ परेशान था ही कौन ? भला वह क्यो परेशान होती जहाँ जी में आए जाओ, रहो । चन्द घण्टों का साथ है । इसके बाद कौन कहाँ रहता है ईश्वर जाने ।

गिरिजा ने बहुत फुसफुसाते हुए पूछा, "कहाँ गये थे ?"

"चौराहे पर चाय पी रहे थे," अभी रम्मू ने पूरी बात नहीं कही थी कि अखिलेश बीच में ही चीख पड़ा । "चुपचाप सोती हो या नहीं ?"

देवा ने करवट बदल कर दूसरी ओर मुँह फेर लिया । हे ईश्वर ! मुझे उठा ले । इस यातना से मुक्त कर दो । नहीं सही जाती यह जिन्दगी, यह घुटन और उसे लगा कि ईश्वर ने उसे उठा लिया है । उसके परिवार के सभी लोगों के साथ अखिलेश भी आँसू बहा रहे हैं । उसका शव जलाया जा रहा है । उसकी समाधि पर फूल चढ़ाया जा रहा है ।

कुछ समय पूर्व की अशान्ति नहीं रही । सभी सो गए या जागते हुए चुप है । गिरिजा तो सो गई । उसके खर्राटे साफ सुनाई पड़ते हैं । अखिलेश भी निश्चल लगता है ।

यहाँ से बाहर निकल भागने का यही उपयुक्त समय है । नहीं कुछ देर और प्रतीक्षा कर ले । उसने सोचा और अखिलेश की ओर मुँह करके अंधेरे में ही

उसे घूरने लगी । मरने के पहले भर ऑख देख तो लूँ । उसे घूरते हुए अचानक लगा कि अखिलेश की एक दूसरी पत्नी आ गई । जिसके साथ वह बहुत मीठी बातें करता हैं । उसके साथ व्यवहार भी रूखा नहीं । यह सब तो केवल उसी के लिए था। जो कुछ उसे पहले मिला था वह अब नई पत्नी को मिल रहा है । उसके मन में एक कटुता भरती गई । सोचा कि इस अॅधेरे मे ही इसके चेहरे पर थूक दे । दोनो हाथों से इसका गला पकड़ कर उमेठ दे । वह तो इस दुनिया से चली ही फिर यही क्यों रह जाएगा ?

वह उठकर चारपाई पर बैठ गई, जैसे अभी उसका गला दबा देना चाहती हो ।

जाने कैसे अखिलेश भी उठ बैठा । दोनो कुछ क्षणों तक भाव-शून्य एक दूसरे को घूरते रहे फिर दोनों ने एक दूसरे को जकड़ लिया । एक प्रश्न भी उठा, 'यह तनाव क्यों है ?' और दोनों ने मन ही मन उत्तर दिया कि वे एक दूसरे को प्यार करते हैं और अगला भोर भी उनके सामने आया जब वे एक दूसरे को देखकर कुढ़ते रहेंगे ।

●

पाँचवी बार

आज पाँचवीं बार तीरा के देखनहरू आने को थे । तीरा का धराऊँ कुर्ता काठ के पुराने बक्से से फिर बाहर निकला । वह इनार पर बड़ी देर तक रगड़-रगड़ कर नहाता रहा । लाल चारखाना रूमाल गंदा हो गया था । उसे सोडा से फींचकर साफ किया और जब ओढ़ पहनकर घर से बाहर निकला तभी उसके बपसी ने टोक दिया, "जा कहाँ रहे हो ?" तीरा चुपचाप खड़ा हो गया । तीरा के बपसी ने उसे घारी में ले जाकर बिठा दिया और बड़ी देर तक समझाता रहा कि जब पहुना लोग उसका नाम-गाँव, खेती-बाड़ी आदि के सम्बन्ध में बात करेंगे तो वह क्या जवाब देगा, कैसे दाहिना हाथ आगे की ओर बढ़ाकर और बाँया हाथ दाईं केहुनी से सटाकर उन लोगों को सलाम करेगा और जब तीरा का बाप तपेशर अपनी समझ से उसे सब कुछ सिखा पढाकर पक्का कर चुका तो परीक्षा के लिए पूछ लिया "अच्छा बताओ तुम्हारे घर पर कितना कर्ज है ?"

तीरा ने तपाक से जवाब दिया, "सात सौ, तीन सौ करोड़ीमल का दो सौ खान साहब का और ।"

"चुप रह साला । कितना समझाया कि जब पहुना लोग पूछें तो कह देना किसी का एक कौडी भी कर्ज नहीं है ।"

तीरा ने कुछ हकलाते हुए कहा, "और पुरनोट जो लिखा है ।"

"अरे पुरनोट के नाना ! पहुना लोग तुमसे पुरनोट माँगने नहीं जायेंगे समझे ।"

"हाँ ।"

"अच्छा तो बता फिर क्या कहेगा ?"

तीरा ने कुछ डरी हुई आवाज में कहा, "कह दूँगा किसी का एक कौड़ी कर्ज नहीं है ।"

"हाँ ! ऐसा नहीं कहेगा तो समझ ले कि इस जन्म में पिछोटा में हरदी नहीं लगेगी ।" और जब तीरा वहाँ से उठकर चलने लगा तो तपेशर ने एक डाँट लगाई, "और सुनो कहीं घर में जाकर पिजावा के नेउर की तरह घुसे मत रहना । साला ।"

तीरा चुपचाप अपने बाप के पास से उठकर घर चला गया । अपनी माँ

से बसिया भात माँग कर आँगन में बैठ गया और जल्दी-जल्दी कौर चलाने लगा। तीरा की माँ परबतिया भी बिना पीढा बिछाये उसके पास बैठ गई, "क्यो रे, ऐसे ही ससुराल में भी हबर-हबर मुँह चलायेगा तो लोग क्या कहेंगे ?" तीरा मुस्की मार के रह गया । उसकी माँ ने यही बात पाँचवीं बार कही थी ।

जब भी तीरा के देखनहरू आते परबतिया को हर बार लगता कि इस वार शादी ठीक हो जायेगी । ससुराल के एक-एक पेंच को खोल कर रख देती । साली-सरहज से लेकर सास-ससुर तक से कैसे व्यवहार करना चाहिए, वह समझाती और कई बार समझाती जब तक कि उसे विश्वास नहीं हो जाता कि अब यदि तीरा की कोई साली चिकोटी काटेगी तो वह रोयेगा नहीं, हँसी-ठिठोली पर रूठेगा नहीं और चकमे में आकर सील-लोढ़ा, ओखल-मूसल को देवता नहीं मान बैठेगा ।

परबतिया अपने बेटे के विवाह में दहेज नहीं चाहती है । पहली बार जब तीरा के देखनहरू आये थे तो तपेशर ने दहेज की चर्चा चलायी थी जो परबतिया को बुरा नहीं लगा था । परबतिया कहती थी कि उसके एक ही तो बेटा है उसकी शादी किसी दलिद्दर के घर हो जायेगी तो जन्म-जन्म का रोना हो जायेगा । आखिर उसके पास कमी किस बात की है ? अकेले को खेती-बाड़ी कम नहीं है, भगवान की दया से दरवाजे पर गोरू-बछरू भी हैं, दूध दही खाने के लिए भैंस है और चाहिए क्या ?

तीरा की बहू घर में रानी बनकर राज करेगी । हाँ, बहू देह-अंग की ठीक होनी चाहिए । गोरी हो चाहे काली । चाल चलन ठीक हो । चटोर न हो, जँगरइत हो । हम गृहस्थ लोगों के घर में दिन भर खटिया तोडने से काम नहीं चलेगा । अन्य मामूली विशेषताओ के अतिरिक्त परबतिया कहती कि हमें कुछ नहीं चाहिए । जब तीरा का पहला देखनहरू नगेसर बिना बात पक्की किये ही लौट गया तो कई दिनों तक परबतिया घर-घर कहती फिरी कि जिसको गरज होगी हजार बार आकर हमारे दरवाजे पर नाक रगड़ेगा । हमें ऐसे घर तीरा की शादी नहीं करनी। हम लोगों का नोह (नाखून) इतना नहीं गिर गया है कि एक मजूर के घर नाता मंजूर करें । तीरा का बपसी कहता था कि दूसरे के घर मजूरी कर के किसी तरह बेचारों का पेट पलता है वह भी दोनों जून नहीं भरता ।

परबतिया ने तीरा को बहुत ही दुलारी आँखों से ताकते हुए पूछा, "और भात लेगा ?"

"थोड़ा सा और ला दो," तीरा ने अँगुली चाटते हुए कहा ।

परबतिया चुहानी घर में भात लेने गई तो तीरा मन ही मन मुस्करा पड़ा। वह सामने पड़ी जूठी पीतल की थाली को टुमकाने लगा । उसके मन के किसी एक कोने में धुन उठी, 'जनिया तोह के लेके ना ' और वह इस धुन को पचा गया। परबतिया ने थाली में भात-दाल परोसते हुए टोक ही दिया, "आज बहुत खुश लगते हो ।" तीरा झेंप गया उसे लगा कि उसकी मुस्कराहट, उसके भीतर की उठी

धुन, गुदगुदी, उसके मन से बाहर निकल चुकी है । उसने अपनी आवाज को कुछ रूखी बनाते हुए कहा, "खुसी तुम लोगों को होगी । हमको क्या है ?"

"हाँ ! क्यो नहीं, मेहरी का मुँह देखने भर की देर है फिर तो माँ-बाप भाड मे जायें ।" कहते-कहते परबतिया ठमक गई । दमरी ऑगन में आके खडा हो गया था । झुलमुलारे ही परबतिया ने गोबर-गोथार साफ किया था और दरवाजे पर खरहर लगा कर दमरी के घर गई थी । दिन भर के लिए उसे मजूर रखने के लिए बहुत चिरौरी-मिनती की थी । दमरी तो पहिले ही तैयार था मगर उसकी मेहरी रमबसिआ नहीं मान रही थी । कहती थी कि सुकुल बाबा का खेत कोड़ने के लिए अगवड़ मजूरी ली है । परबतिया ने काफी चिरौरी की, "इज्जत का सवाल है । आखिर रोज-रोज तो पहुना घर पर नहीं आते । गाँव घर की इज्जत अगर गाँव वाले नहीं समझेंगे तो बिराना क्या समझेगा । जितना सब लोग मजूरी देते हैं वह चार पैसा बढ़ा कर दे देगी । पत्थर तो पीटना नहीं है । दरवाजे पर रहेगा । बैल-गोरू के लिये चारा काट देगा । सब दिन तो अपने हाथ से करना ही पडता है।" जब दमरी की मेहरी किसी भी तरह तैयार नहीं हुई थी तो वह उसके घर से रूठ कर चली आई थी, "हमको भी इसी गॉव में रहना है एक न एक दिन सबके ऊपर पड़ता है ।" जब परबतिया दमरी के घर से रूठ कर चली थी तो भी उसे विश्वास था कि दमरी जरूर जायेगा। दमरी की मेहरी जबान की चाहे नागिन हो मगर दिल की साफ है ।

परबतिया मुस्कराती हुई दमरी से पूछ पड़ी, "मेहरी ने छुट्टी दे दी ?"

दमरी लजा गया । उसे शुरू से ही रमबसिया पर गुस्सा आ रहा था । मगर चुप रहा । जब परबतिया उसके घर से लौट आई थी तो वह चिढ़ कर उसे खरी-खोटी सुनाने ही वाला था कि रमबसिया ने अपने ही से कह दिया, "इज्जत का मामला है । आज तपेशर के घर रह जाओ । सुकुल बाबा की मजरू कल भर देना ।"

दमरी ठण्डा पड़ गया ।

परबतिया ने दमरी की झेंप मिटाने की गरज से बात आगे नहीं बढ़ाई और उसके सामने से परे हटते हुए कहती गई, "दुअरा पर लोटा-गगरा रखा है । जाओ हाथ-पैर धोकर कुछ पानी पी लो । फिर दिन भर तो खटना ही है ।"

तीरा जूठी थाली वहीं आँगन में छोड़कर उठ गया । ढेर सी मक्खियाँ थाली में चारों ओर भिन-भिनाने लगी थीं । परबतिया ने थाली के चारो ओर गिरे जूठन को उठाकर थाली में रखा और उसे पनडोहा के पास रख आई । अभी सबेरे ही उसने आँगन को गोबर से लीप-पोतकर चिकना किया था । पनडोहा भी गन्दा हो गया था । बास आती थी । बडे-बड़े पूँछ वाले कीड़े इधर-उधर रेंगते थे । कई गगरा पानी तो वही साफ करने में लग गया था । परबतिया को लगा कि आँगन इस बीच फिर गन्दा हो गया है । उसने आँगन में झाड़ू दिया । एक-एक तिरिन बटोर कर बाहर फेंक आई । हाथ धोकर दमरी के आगे थाली में नमक-पिआज के

साथ सतुआ परोस रही थी कि दरवाजे पर खटका हुआ । सतुआ की डलिया दही पर छोड़ दी, ''जितना जी मे आवे ले लो ।'' वह दरवाजे पर झाँकने चली गई देखा तो सुखारी भगत तीरा से कुछ पूछ रहा था और तीरा घारी के दरवाजे पर ओरी की बाती पकडे हुए परुआ बैल की तरह चुपचाप खडा था । परबतिया ने डाँट कर तीरा को पास बुलाया, ''कुछ काम-धाम नही है क्या ? उनको (तमेसर को) तो बात ही करने से फुरसत नही मिलती । कुछ खटिया मचिया-बिछाने का इन्तजाम करते । खेत में से परोरा तोड कर लाना है । बुद्धू भगत के घर दही जमा पडा है। आखिर यह सब कौन करेगा ?'' परबतिया को यह सब कहते-कहते उसकी छोटी-छोटी अधेड ऑखों में क्षोभ तैर गया । वह उसी आवेश में भुनभुनाती हुई तजी से मुड़ गई, 'सब मेरे ही जान को पडे हैं । जब और किसी को गम नहीं तो फिर हमीं क्यों अपना जाँगर पेरते रहें । हमारा शरीर पत्थर का तो नही हैं न । बहुत सुकुमार बने हैं लोग, बाद में पता चलेगा । हमको भी क्या है । चल रहे है टॉग पसार कर सो रहेगे ।'

परबतिया भुनभुनाती अलग है और सोचती करती बिल्कुल अलग है । दमरी के पास खडी हुई तो बीसों काम गिना गई, ''ताल वाले खेत से दजडा काट कर लाना है । नाद मे पानी डालना है । द्वार पर दस गगरा पानी गिरा कर खरहर लगाना है। तिवारी बावा के पिछवाड़े जो पाकड़ गिरी है उसमे से दो खॉची लकडी फाड़नी है । अरे ऐसे ही थोडे कह रही हूँ । कल शाम को ही तिवारी बाबा से मॉग चुकी हूँ तुम पर क्यो बिगड़ेगे ? आखिर कौन दो-चार पतोहू पडी हैं जिनके आसरे बैठी रहूँ । उनको देख ही रहे हो एक मिनट भी सॉस लेने को फुरसत नहीं मिलती सबेरे से छाँटी-पानी में लगे रहे अभी-अभी पुरोहित बाबा के घर गये है। पुरोहित बाबा घर पर मिल गये तो मिल गये नहीं तो और भी सॉसत हो जायेगी ।''

अभी दमरी सतुआ सान रहा था तभी उसे समझा बुझा कर वह चावल फटकने चली आई । डेहरी मे से चावल निकाला । सूप मे चोकर पडा था उसे एक किनारे कुरिया दिया और जब चावल फटकने लगी तो शादी के गीत की धुन पर सूप के 'फट-फट' की आवाज भी फटफटाती गयी, कौन जाने अबकी बार क्या हो ? घर ही नहीं पसन्द आये ? हे काली माई ! इस बार तीरा की शादी पक्की हो जाये तो कड़ाही चढ़ाऊँगी । हे महावीर बाबा ! जिस दिन तीरा विवाह कर, घर लौटेगा उसी दिन सवा सेर लड्डू चढ़ाऊँगी । हे महादेव जी !

''अरे तू अभी तक यहीं है ।'' तीरा का मुँह देखकर परबतिया पिघल गई ? पुचाकारते हुए बोली—''जाओ बेटा, काम करने से ही होगा । बताओ न आखिर यह सब कौन करेगा ? अभी बहुत काम करना है । चावल नहीं फटका गया, मसाला पीसना है, रसोई-पानी करनी है । और दिन होता तो मैं खेत खलिहान भी चली जाती मगर इज्जत का सवाल है । मैं भीतर का काम करने को तो कहती नहीं । मरद-मानुस का जो काम है हमसे कैसे होगा ? जाओ बेटा ।''

आज तीरा का मन घर से बाहर निकलने को नहीं करता था । अपना ही

पहना हुआ कुर्ता-धोती देखकर वह झेप जाता था । मन ही मन कई बार घर से बाहर निकलने का हुमॉच बाँधता किन्तु अपने आप से ही लजा जाता और घर में इधर-उधर चक्कर लगाकर रह जाता । उसे लगता कि आज गॉव के हर मोड पर लड़के. बूढे, जवान उसे चिढ़ाने के लिये खडे हैं ।

बहुत लाचारी के साथ उसने अपना कुर्ता निकाल कर अरगनी पर टाँग दिया । गमछा कमर में बाँधा । धोती खुँटिया कर जघे तक चढ़ा लिया । फिर सिर लटकाये हाथ में डलिया लिये घर से बाहर निकला जैसे हत्या लगी हो । परोरा का खेत गाँव के पश्चिमी छोर पर पड़ता है । वहाँ तक जाने का रास्ता नन्हकू के दरवाजे से होकर जाता है । एक और भी रास्ता है उत्तर से होकर । मगर काफी चक्कर देना पड़ता है और उधर भी तो गुल्ली का घर पड़ता है । ऐसे तो समूचा गाँव ही उसे चिढाता है । कोई उसे डोम कहता है तो कोई 'कोइला' मगर नन्हकू तो उसे रुला मारता है ।

सामने ही नन्हकू दिखाई पड़ा तो उसके प्राण उड़ गये । वह कन्नी काटकर भागना चाहता था कि नन्हकू ने उसकी बाँह पकड़ ली । तीरा छटपटाता रहा मगर नन्हकू ने अपने हाथ की खाँची वहीं रास्ते पर रख दी और बैठते हुए तीरा को भी जबरदस्ती बिठा दिया । नन्हकू ने नकली अपनापन जताते हुए ताना मारा, "क्यों भाई आज कल क्या पूछना है ? चकाचक है ! मुँह पर लात रख के खा रहा है । कुछ हम गरीबों पर भी तो नजर रखते ।" मँगना भी अपना रास्ता छोड़कर वहीं चला आया था उससे अपनी बात को पक्की कराते हुए नन्हकू ने तीरा से पूछा, "क्यों रे बेंगा डोम की बिटिया तुम्हारी इन्तजार में जन्म भर कुँआरी ही रहेगी ? उससे विवाह नहीं करोगे क्या ?"

तीरा बौखला गया । "छोड़ दो हमें," और किसी तरह अपनी बाँह छुड़ा कर खडा हुआ कि नन्हकू ने उसे फिर पकड़ लिया । तीरा उसे तमाम धराऊँ गालियाँ देने लगा ।

मँगना ने तीरा की रुँआंसी गालियों का मजा लेते हुए कहा, "कल तो बेंगवा सूप-चलनी लेकर आया भी था ।"

"हाँ भाई फलदान देने आया था । कहता था कि लड़का हमें पसन्द है। हमारी जात-बिरादरी में खप जाएगा । सोलह चूँची की सोलह भैंस देने को कह रहा था । मैंने जिम्मा ले लिया । मगर जमाना भलाई का नहीं है ।" तीरा की आँखों में हँसी छोड़ते हुए नन्हकू ने अपनी बात खत्म की, "कहाँ तो साला हमें पियरी धोती देता, गाली दे रहा है ।"

तीरा ने मँगना को भी एक भारी गाली दी । नन्हकू की पकड़ ढीली हो चुकी थी । तीरा बॉह छुड़ा कर किसी तरह भगा तो भी उसके पीछे नन्हकू और मँगना की आवाज भागती रही, "बहुत जबरदस्त किस्मत है इसकी । सूप-चलनी खरीदनी नहीं पड़ेगी । दूध-दही से इसका घर भर जायेगा । अभी तो यह शरीर है जब सोलह चूँची वाली भैंस का दूध पीयेगा तो साला मोटा होकर कोल्हू हो

जायेगा ।''

और जब पीछे-पीछे आती आवाज विला गई तो तीरा ने पीछे मुड़कर देखा। नन्हकू और मॅगना घर की ओर जाते हुए दिखाई पडे । तीरा ने चैन की सॉस ली, 'जनिया तोहके लेके ना ।' उसकी आवाज तेज हुई और हल्की गई ।

अपने खेत मे पहुँचा तो मेंड के दूसरी ओर गुल्ली घास छील रहा था । गुल्ली ने तीरा को देखा तो सिर नीचा किये हुए मुस्करा पडा । तीरा झेंप गया उसे लगा कि उसे गुल्ली ने गाते हुए सुन लिया है और अब वह सारे गाँव में इसका प्रचार करता फिरेगा । गाँव में हल्ला करके भी साला हमारा क्या बिगाड लेगा । सामने तो कुछ कह नहीं सकता । तीरा के मन में इस उपेक्षा से साहस बँधा । उसने खेत में एक किनारे डलिया रख दी । गमछा गले मे बॉधकर झोरा बनाया और परोरा तोडने लगा । कई दिनों से पहुना लोगो के इन्तजार मे परोरा नहीं तोडा गया था । चार-पॉच थान परोरा तोड़ने पर ही उसका झोरा भर जाता जिसे वह ले जाकर डलिया में खाली कर देता । हर बार कनखियो से गुल्ली को देखता और मन ही मन सुलग के रह जाता । पूरे गाँव में एक गुल्ली ही ऐसा आदमी है जिसको देखते ही तीरा के सारे शरीर में लुत्ती छिटकने लगती है । अगर तीरा का वश चलता, अगर वह गुल्ली से मजबूत होता तो गुल्ली को पटक कर पीटता । जब भी तीरा गुल्ली को देखता है ऐसे ही सोचता है । कभी-कभी तो उसे लगता है कि वह गुल्ली की छाती पर चढ़ा हुआ उससे कबुलवा रहा है, 'बोलो अब तो कभी नही चिढ़ाओगे,' गुल्ली हाथ जोड़ता है, चिरौरी विनती करता है, 'नही अब कभी नही ! माफ कर दो' और असलियत यह है कि तीरा सिर्फ दाँत पीस कर रह जाता है । उसे याद आता है वह दिन जब दूसरी बार उसके देखनहरू आने वाले थे । वह इनार पर पीपल के पेड़ के नीचे गुल्ली के साथ नहा रहा था । बात-बात में गुल्ली तीरा को समझाने लगा, 'देख कोइला ! यह जो तुम्हारे माथे पर जन्म-जात पिलपिली गोली है अगर कहीं पहुना लोगों ने देख लिया तो तुम्हारी शादी नहीं होगी। ऐसा करना कि जब पहुना लोगो के सामने पहुँचना तो धोती खोलकर सर पर बॉध लेना। आखिर देखनहरू लोग क्या देखेंगे ? भगवान कसम अगर तुम्हारी शादी नहीं ठीक हो जाये तो हमारे मुँह पर थूक देना ।' पहले तो तीरा के मन मे लगा कि गुल्ली हँसी कर रहा है किन्तु वह ऐसा मुँह बनाये रहा और ऐसी-ऐसी बाते करता रहा कि तीरा के मन में गुल्ली की बातें जम गई । सयोग कि उसी दिन देखनहरू भी आ गये और तीरा नंग-धड़ंग माथे पर मरदानी बॉध देखनहरू लोगो के सामने चला गया था । पहुना लोग तो थोडी ही देर बाद उठकर चले गये किन्तु उन लोगों के जाने के बाद तीरा की जो दुर्गति हुई उसे आज भी वह भूल नही सका है । बहुत दिनों तक सारा गाँव इसी बात को लेकर उसे चिढ़ाता रहा । तीरा और गुल्ली के बीच तभी झगड़ा हुआ था जिसका प्रभाव अब तक बना हुआ है ।

तीरा की डलिया भर गई । थोडा सा परोरा बचा तो उसने गमछा मे बाँध कर कंधे पर लटका लिया । खेत से जाते-जाते उसने फिर गुल्ली की ओर

देखा । वह अब भी घास छील रहा था । तभी तीरा को होश आया कि अभी उसे बुद्धू के घर से दही लाना है । उसने अपनी चाल कुछ तेज की । अभी खेत के मेड से उतर कर छवर तक आया था कि फिर धुकधुकी उठी । कौन जाने देखनहरू लोग दरवाजे पर पहुँच चुके हों । झूठ-मूठ उसने कुर्ता निकाल कर घर पर छोड दिया । अगर उसे उन लोगों ने देख लिया तो ? जव बिल्कुल घर के करीब पहुँचा तो बरगद की छाँह मे खडा होकर रास्ता देखने लगा कि पास-पड़ोस का कोई उधर से गुजरे तो वह पूछ कर पता कर ले । थोड़ी देर तक जव कोई भी नही दिखाई पड़ा तो चक्कर देकर पिछवाड़े से घर में घुसा । परबतिया ने जो उसे देखा तो हँस के रह गयी, "डरता काहे है ? देखनहरू लोगों का कहीं पता-सुराग नहीं और तुम्हारी जान अभी से निकली जा रही है ।"

तीरा ने डलिया आँगन में रख दिया । गमछा खोल कर परोरा वही जमीन पर कुरिया दिया । दुअरा पर कोई नहीं था । घारी मे खटिआ-मचिआ जुटाकर बिछा दिया गया था । पीतल का गगरा माँज-धोकर भरा रखा था । तीरा को सन्देह हुआ कही बुद्धू के घर से दही भी आ गया हो । पूछने के लिये अपनी महतारी के पास गया तो कुछ देर तक घर ही में इस कोने से उस कोने डोलता रहा । बहुत साहस बटोर के पूछा तो मसाला पीसना बन्द करके परबतिया उबल पड़ी, "इस बीच कौन ला दिया ? अभी उनका पता ही नही है । सबेरे जो गये तो अभी तक न जाने कौन कमाई ढा रहे हैं । दमरी आखिर अकेले क्या-क्या करेगा? बैल-गोरू भी तो देखना है ।"

तीरा चलने लगा तो परबतिया ने रोक दिया, "अंगरखा पहन लो । अब तो उन लोगों ने आने का भी टैम हो गया है ।" तीरा ने कुर्ता कन्धे पर रख लिया।

"पहनने में शरम लगती है ? ऐसे कैसे गुजर होगा ? यही रहन रही तो मेहरी भी अँगूठा दिखा कर चली जायेगी ।"

तीरा भुनभुनाया, "रास्ते में पहिन लूँगा।" और वहाँ से चला गया ।

परबतिया मसाला पीसती हुई सोचती रही कि उसका तीरा वउचट है, बमभोला है । उसे कैसे समझाऊँ ? किसी ने उसकी मत ही छीन ली है । जब अपना ही सौदा खबीस है तो दोष भी किसको दिया जाये ? लाख समझाओ कुछ बूझता ही नहीं है । अतवार-अतवार पन्द्रह आज सोमवार सोलह दिन हुए जीरा भगत आए थे तो एक तरह से सब कुछ पक्का ही हो गया था । दस रुपये और एक मरदानी फलदान भी चढा गए थे । पूरा गाँव कहता था कि जीरा भगत बहुत बडा गृहस्थ है । तीरा की तकदीर ही खोटी थी । चलते-चलते तीरा को जीरा भगत ने बुलाकर अपने पास बैठा लिया था और न जाने कितने सवाल खेती-बाडी को लेकर पूछते रहे । जव तक तीरा के बपसी जीरा भगत के पास पहुँचते बात बिगड़ चुकी थी । असल बात है प्रारब्ध । जहाँ जिसका दाना-पानी लिखा होता है वहाँ पहुँच के रहता है । जीरा भगत की बेटी का दाना-पानी कही और बदा होगा।

परबतिया ने सील पर से पीसा हुआ मसाला काछ कर थाली में रखा ।

एक दूसरी थाली से उसे ढँक दिया और जब खड़ी हुई तो कमर में जोर की टूटन महसूस हुई । वह बेंत की तरह झुकी और फिर हिम्मत करके उसने अपनी कमर सीधी की । उसे लगा कि दालान में कोई आया है । वह आँचल से माथा ढँकती हुई दालान में आई तो तपेशर था । परबतिया कुछ कहे इसके पहले ही तपेशर कहने लगा—"पुरोहित बाबा घर पर नहीं थे । दौडते-दौड़ते जान निकल गई । उनके घर गया तो पता लगा कि हरपुर गये हैं । हरपुर गया तो पता लगा घर गये हैं । किसी तरह भेंट हुई । कहा है शाम तक आ जायेंगे ।"

परबतिया कहना तो बहुत कुछ चाहती थी मगर जोर की हुमारी भर कर चुप हो गई जैसे सब कुछ भूल गई हो । किन्तु जैसे ही तपेशर ने पूछा—"तीरा कहाँ गया है ?" वह बिगड़ गई, "तुमको कुछ घर-बार की भी चिन्ता है । जहाँ गये वहीं के हो गये । घर पर मेहमान आ रहे हैं और अब तक कोई इन्तजाम-बात नहीं हुआ।" तपेशर चुपचाप वहाँ से चलने लगा तो परबतिया को जैसे उसका सवाल याद आया । वह कुछ नरम होकर बोली, "तुम्हारा सपूत अभी-अभी बुद्धू के घर दही लाने गया है । सुनो ! जा कहाँ रहे हो ? हाथ-पैर धोकर कुछ पानी पी लो ।"

तपेशर मुड़कर खड़ा हो गया । परबतिया ने भर लोटा पानी उसके आगे रख दिया और जब वह हाथ-मुँह धोकर भात खाने बैठा तो परबतिया ने बहुत ही डरी आवाज में बात चलायी, "पहुना लोग अब तक नहीं आये । कहीं ऐसा तो नहीं कि ।"

तपेशर कड़ा पड़ गया, "आयेंगे क्यों नहीं ? अभी कल ही तो बिरझन राम मिले थे । कहते थे सारी बात पक्की कर ली है । इस बार शादी नहीं बिचल सकती। कहीं दूर से तो आना नहीं है । यही तीन पाँव जमीन होगी । काम-धंधा से निपट कर घड़ी भर दिन रहने पर भी लोग चलेंगे तो दिन बराबर पहुँच जायेंगे ।"

किसी दूसरे की बात होती तो परबतिया अविश्वास भी करती । बिरझन तो उसी का सगा भाई है । भला वह क्यों झूठ बोलेगा ? उसे भी तो चिन्ता है । फिर भी परबतिया ने ऊपर के मन से कहा—"किसी का भी क्या ठिकाना ? अब तक लोग नहीं आये । कौन जाने ?" तपेशर ने बीच ही में बात काट दी, "यह भी आने का कोई समय है । अब तक लोगों को आना होता तो पहुँच गये होते ।"

परबतिया को लगा कि उसके कमर का दर्द बढ़ता जा रहा है । बैठे-बैठे उसकी टाँगे अकड़ती जा रही हैं । पैर में झुनझुनी हो रही है । वह खड़ी हुई तो लगा कि ढह जायेगी । उसने सोचा ठीक है तब तक वह सबको खिला-पिलाकर आराम कर लेगी । फिर तो रात भर खटना ही पड़ेगा ।

आराम न तो परबतिया ने किया न तपेशर ने । बीस तरह के काम बीस तरह की चिन्ता । तपेशर को कई बार झपकी भी आई तो कोई न कोई अड़चन उसकी आँखों में किरकिरी की तरह पड़ जाती । 'इतना बड़ा ढढ्ढू-पाड़ा हो गया, अब तक न बोलने-चालने का शऊर न उठने-बैठने का । आखिर कब सीखेगा ?

और भी तो लड़के इसी गॉव में है । सब अपना घर-बार चेत रहे हैं और एक यह है कि ।'

तपेशर अभी न जाने और क्या-क्या सोचता है कि दमरी ने हाँफते हुए आकर कहा "पहुना लोग आ रहे है ।"

तपेशर भीतर ही भीतर पुलक उठा, "कितने लोग हैं ?"

"चार जने दिखाई पड़े । एक तो बिरझन राम हैं और बाकी तीन जने हैं।"

तीरा अभी तक वहीं खड़ा था । तपेशर ने उसे फिर डांट दिया, "उल्लू की तरह यहाँ क्यों खड़े हो ? घर में जाकर अंगरखा पहिन लो । हाथ-मुँह धो लो।"

परबतिया आहट पाकर दालान में चली आई थी । उसने दमरी को भीतर बुला लिया और खोद-खोद कर पूछने लगी, "कहाँ देखा है ? अभी कितनी दूर पर लोग होंगे ? कैसा कपड़ा पहने थे ? कुछ मोटरी-गठरी भी थी कि खाली हाथ थे ?" तपेशर के भीतर न जाने कहाँ की फुर्ती समा गई । उसने जल्दी-जल्दी घारी में से सारी चारपाइयाँ बाहर निकाल कर दरवाजे पर बिछा दी । सब पर दरी बिछाई । नरकुल की एक बड़ी सी तरई लाकर दरवाजे से हटाकर पश्चिम की ओर फैला दी । दमरी को हाँक देकर बाहर बुलाया, मिट्ठा-पानी ठीक करने को कहा और स्वयं पूरब की ओर रास्ता देखने चला गया । थोडी दूर जाकर बल्ली के घर की ओर मुड़ गया । बल्ली दरवाजे पर बैठा रस्सी बट रहा था । तपेशर ने मुस्कराते हुए उसे खबर दी, "पहुना लोग आ रहे हैं । काम तो रोज करना ही है, चलो उन लोगों से बात करने वाला भी तो कोई चाहिए ।" बल्ली ने खुशी-खुशी मूँज और रस्सी लुड़िया लिया, "तुम चलो मैं अभी पहुँचता हूँ ।" तपेशर रामजस के घर की ओर चला गया । रामजस घर पर नहीं था । उसका बड़ा बेटा चारा काट रहा था। उसी से कह दिया, "भाई आयें तो तुरन्त भेज देना जल्दी है ।" और अभी मुनेसर के घर की ओर जा रहा था कि रास्ते में मुनेसर की छोटी बिटिया सुगनी मिल गई। सुगनी ने दूर ही से हल्ला किया, "काका ! काका ! पहुना लोग दरवाजे पर पहुँच गये है ।" तपेशर ने अपनी चाल कई गुनी बढ़ा दी । जल्दी-जल्दी दरवाजे पर पहुँचा । पहुना लोग बैठे हुए कुछ बतिया रहे थे । बिरझन राम घर में परबतिया से बतिया रहा था । दमरी लोटा माँज रहा था । उन लोगों ने तपेशर को देखा तो खटिया पर से उठ गये । राम रोहारा हुई । तपेशर होने वाले समधी की बगल में खटिया पर बैठ गया । "घर से कब चले ? फसल कैसी है ? बड़ी गर्मी है, यही मौसम रहा तो इस साल भी कुछ नहीं होगा । भगवान नाराज हैं ।"

उसने गुड़ की डलिया चारपाई के नीचे से बाहर खींच लिया, दमरी ने लोटा और पानी लाकर खटिया के नजदीक रख दिया । "अच्छा पहले जलपान हो ले फिर बात तो करनी ही है ।" तपेशर घर में चला गया । बिरझन राम अभी परबतिया से बतिया रहा था । तपेशर को देखा तो चुप हो गया ।

"अभी-अभी क्या खुसर-फुसर हो रही थी ?" तपेशर ने हँसी की ।
"पाँव लागो पहुना ।" बिरझन ने प्रणाम किया ।

"राजी-खुशी रहो । क्या हाल-चाल हैं ?"

"सब ठीक-ठाक है । मैंने सब कुछ तय कर लिया है । अब कोई कोर कसर बाकी नहीं है । लडका भी मैंने बता दिया है कि जरा रग का काला है ?"

"तब उन्होंने क्या कहा ?"

"काले रंग से क्या होता है ? काले तो भगवान भी थे । लड़का होशियार हो, हट्टा-कट्टा हो बस इतना ही हमें चाहिये ।"

"हूँ ! तीरा कहाँ है ?" तपेशर ने परबतिया की ओर मुँह फेरते हुए पूछा।

"द्वार पर होगा," परबतिया ने विश्वासपूर्वक कहा । "दुआर पर नहीं है," तपेशर चीख पड़ा ।

"मै जब से आया हूँ वह कहीं नहीं दिखाई पड़ा ।" बिरझन राम ने चिन्ता प्रकट करते हुए कहा ।

जाति बिरादरी के लोग जुटते गये पूरा घर भर गया । घर में औरतों की भीड़ लग गई और तपेशर तीरा को खोजता फिरता रहा । पण्डित जी ने जंत्री देखकर तिलक और शादी की मुहूर्त निकाली तो समधी बिगड़ गये, "हमको ठगा नहीं जा सकता । हम इस साइत को नहीं मानते । पतरा देखकर साइत बताइये। पतरा लम्बा होता है । यह तो सोरठी-विजयमल के किताब की तरह है ।" पुरोहित बाबा ने अपने गाँव से आदमी भेजकर पत्रा मँगवाया । बहुत रगड़-झगड़ के बाद साइत ठीक हो गई । मगर तीरा का कही पता नहीं लगा । औरतें गीत गाने की तैयारी करने लगी । मेहिआ चावल का भात, अरहर की दाल, उडद की बड़ी, रिकवँच, सब कुछ बनकर तैयार हो गया और तपेशर पागलों की तरह एक घर से दूसरे घर चक्कर काटता रहा ।

पहले तो तपेशर अकेला ही तीरा को खोजता रहा । वह नहीं चाहता था कि किसी को पता चले कि तीरा गुम है । मगर जब घण्टों बीत गये, गाँव के सारे घर छान मारे तो बात एक कान से दूसरे कान फूटने लगी ।

धीरे-धीरे दरवाजे पर से एका-एकी लोग उठने लगे । औरतों की भीड कम होने लगी और जब तपेशर तीरा का हाथ पकड़े घर पहुँचा तो दरवाजे पर केवल देखनहरू लोग और पुरोहित बाबा बच गये थे ।

●

तलाश

उसने कुछ ही क्षण पूर्व ईश्वर से प्रार्थना की थी, 'हे ईश्वर ! तू मुझे इस दुनिया से उठा ले । मेरी जिन्दगी उन तमाम लोगों में बाँट दें, जो जीवित रहना चाहते हैं; जिन्हें कुछ देने और पाने की उम्मीद है । मैं ।' और वह फूट पड़ा था। ऐसे ईश्वर के अस्तित्व को लेकर भी वह यही तर्क देता रहा है कि, वह है, तो जाहिर है कि ईश्वर नहीं है और वह कैसे मान ले कि वह नहीं है ।

किन्तु जिस क्षण वह प्रार्थना कर रहा था उसकी बहुत पुरानी आस्था जग गयी थी । उसे लग रहा था कि ईश्वर यहीं आस-पास कहीं खड़ा है और उसकी हर बात बहुत ध्यान से सुन रहा है । और कुछ नहीं तो कम से कम वह उसके भीतर इतनी शक्ति ही भर सकता है कि वह बिना आगा-पीछा सोचे इस छत से कूद जाए और सदा के लिए इस दुनिया से कूच कर जाये ।

सबेरे-सबेरे की धूप हॉस्टल की पाँचवीं मंजिल पर उसे सहला रही थी । ठण्डक अभी भी थी । कम्बल में अपने को पूरी तरह लपेटे रहने पर भी वह कभी-कभी भीतर से सिहर जाता था । छत के एक कोने से दूसरे कोने तक वह एक मशीन की तरह चल रहा था । वैसे भी सबेरे घूमने की आदत उसकी कभी नहीं रही । भोर को उठने की आदत भी कभी नहीं रही । किन्तु पूरी रात एक पल के लिए भी उसकी आँखें नहीं लगी थीं । सोने की बहुत कोशिश की थी । इस ठण्ड में वह रात को नहाया था, फिर स्टोव जलाकर देर तक अपने को गरम करने की कोशिश की थी और फिर जब चारपाई पर पड़ा था, तो वे ही सारे सवाल खटमल की तरह काटने लगे थे ।

'क्यों ? वह जीवित क्यों रहे ? किसलिए ?'

यदि उस समय उसके पास किसी भी तरह का विष होता, तो उसने निश्चय ही उसे खाकर अपने जीवन का अन्त कर लिया होता । यदि रात नहीं होती और उस समय बाजार नहीं बन्द होता, तो भी वह दवा वाले दुकान से विष खरीद लाता । किन्तु यह सब कुछ नहीं था और उसे रात भर जीवित रहना पड़ा था । पता नहीं कैसे उस समय छत से कूदने का ध्यान नहीं आया और केवल अपनी बेचारगी का ही एहसास होता रहा कि वह इस समय चाहते हुए भी मर नहीं सकता, क्योंकि दुकानें बन्द हैं, क्योंकि उसके पास अपने जीवन का अन्त कर

डालने का कोई साधन नहीं है ?

और फिर वह महसूस करने लगा था कि बहुत दिन पहले ही उसे मर जाना चाहिए था । माँ की मौत के साथ ही उसे भी मर जाना चाहिए था । उस समय वह साल भर का था । उसकी माँ उसे ही जन्म देने के कारण बीमार पड़ी थी और मर गई थी । वह अक्सर किसी मरती हुई माँ को देखकर अपनी माँ की कल्पना करता है, अपने स्वयं की कल्पना करता है ।

वह चारपाई पर पड़ा दूध का निपुल मुँह मे लगाये छत की ओर देख रहा है और मुस्करा रहा है जबकि उसकी माँ मर गई है और उसके पिता आँसू बहा रहे हैं । अर्थी उठाने वाले आये हुए परिजन कहते हैं, 'यह लड़का नहीं पिशाच है पिशाच । पैदा होते ही अपनी माँ को खा गया ।' यह सब कोरी कल्पना नहीं है। उसने अपनी बड़ी दीदी से बहुत पहले सुनी है इसी तरह की बातें और याद हैं। अब इस तरह कोई नहीं कहता है । न कहे । अब तो लोग झूठ अधिक बोलने लगे हैं ।

'मेरी माँ कैसी थी ?' माँ की कोई तस्वीर नहीं । इसलिए वह पूछता था और उसकी दीदी बताती थी, 'तुम्हारी ही तरह वह भी नाटे कद की थी । उसके पाँव भी तुम्हारी ही तरह पतले और लम्बे थे । उसके दोनों कान भी तुम्हारी ही तरह छोटे थे । किन्तु उसका रंग गोरा था ।'

छत पर वह बहुत रुक-रुक कर चलने लगा था । कभी-कभी वह मुँडेर से झुककर नीचे झाँक लेता था । छत जमीन से लगभग पचास फुट ऊँची तो होगी ही । पीछे की ओर खाई भी पच्चीस-तीस फुट गहरी होगी । खाई में पड गया तो शायद ही किसी की नजर पड़े । जब तक बड़े दिन की छुट्टियाँ हैं तब तक वह खाई में सड लेगा । जब हॉस्टल में उसकी लाश की दुर्गन्ध पहुँचेगी, तो वह खोज निकाला जायेगा । कौन पहचानेगा उसे ? विकृत लाश । गिद्धों और मांस-भक्षी पशु-पक्षिओ द्वारा नुची हुई लाश ।

इस कल्पना के साथ उसे अपने ही से घिन हो आई थी, किन्तु यह घिन भी उसे जीवित रहने की अपेक्षा बहुत कम लगी थी । उसने अपने को तुरन्त आश्वस्त कर लिया था । मरे हुए आदमी की लाश और सड़े हुए गोभी के फूल में कोई अन्तर नहीं । रोज न जाने कितनी लाशें मेडिकल कॉलेज में काटी जाती हैं। हथौड़े और छेनी चलते हैं । उसने अपनी आँखों देखा है जैसे वे आदमी न होकर टूटी हुई कुर्सी-मेज हों । लाश को दुःख-सुख कैसा ? घिन कैसी ? यह सब जीवित रहने पर ही है और वह जीवित नहीं रहेगा । अभी चन्द मिनटों के भीतर वह धीरे से मुँडेर पर बैठ जायेगा । फिर अपने दोनों पॉव नीचे लटका देगा और अपने को ढीला छोड देगा । बस, उसका सारा दुःख समाप्त । उसे इस बात से भी सन्तोष हुआ कि उसने आत्महत्या के लिए ऐसा समय चुना है जबकि यहाँ उसका कोई साथी नहीं है । एक पाल था, जो छुट्टियाँ यहीं बिताने को था, वह भी कल चला गया था । जाते समय भी पूछा था, 'दिनेश, तुम भी घर क्यों नहीं चले जाते ? एक

महीने की इतनी लम्बी छुट्टी में यहाँ रुककर करोगे भी क्या ?'

पहले उसने टाल दिया था, 'यार ! रिसर्च किसी तरह पूरी कर लेनी है। अब एक ही बार घर जाएँगे गर्मियों की छुट्टी में ।' वैसे वह जानता था कि गर्मियों की छुट्टी में भी वह घर नहीं जायेगा । बीते चार सालो से बराबर गर्मी की छुट्टी होती आ रही है और वह पड़ा है तो एक पत्थर की तरह पडा ही रह गया है । छुट्टियाँ कचोटती हैं । कोई भी त्यौहार कचोटता है । सभी लोग जिस दिन होली और दिवाली का उत्सव मनाते हैं, वह भंग पीकर अकेले कमरे में सो जाता है । नहीं ! शराब पीने के अवसर तो बहुत आये किन्तु पता नहीं कैसे उसका साहस यहाँ जवाब दे जाता है । पुराने संस्कारों को भोजन-छाजन के मामले में तोड़ पाना उसके वश का कभी भी नहीं रहा । यहाँ भी जीवित रहने की लाचारी की तरह की एक लाचारी के दलदल में फँसा हुआ वह बाहर निकलने की हुमस भरकर रह जाता रहा है । दूसरों के कमरे से शराब की बाते करना उसकी हॉबी रही है और शायद इसीलिए उसके बहुत से दोस्त यहाँ तक कहते हैं कि उन्होंने दिनेश के साथ बैठकर शराब पी है, जिसका प्रतिवाद उसने कभी नही किया । हाँ वह पीता है । यदि उसके पिता भी पूछते, तो वह कह सकता था कि वह शराब पीता है । खूब मांस-मछली खाता है । वह बिल्कुल वही नहीं है, जो वे है । एक तरह से वह उनका बिल्कुल उलटा है । वे धार्मिक प्रवृत्ति के हैं, तो वह नास्तिक है । वे एक हट्टे-कट्टे पहलवान हैं, तो वह दुबला-पतला कमजोर आदमी है । वे धन सग्रह में विश्वास रखते हैं, तो उसे गृहस्थ-धर्म मे कोई आस्था नही । वह उनसे बिल्कुल अलग है । और बावजूद इन सारी बातों के वह कभी-कभी अपनी ही आवाज से चिहुँक जाता है । उसे लगता है उसकी आवाज उसके पिता से बहुत कुछ मिलती-जुलती है । उसका अकडकर चलने का ढग भी कुछ-कुछ पिता से मिलता-जुलता है और तब वह भीतर से स्वयं के प्रति एक तरह की जुगुप्सा झेलने लगता है । खीझ होती है । क्या उसमें अपने पिता के अतिरिक्त अपना कुछ नहीं है ? शिक्षा-दीक्षा का अन्तर, वातावरण का अन्तर और भी बहुत सारे अन्तर, जो वह अपने में ढूँढ-ढूँढ कर निकालता है, बहुत हल्के लगते हैं और वह सोचता है, वह मात्र एक पीढ़ी है, जिसका बदलाव ऊपर से चाहे जितना भी हुआ हो भीतर से वह एक जैसा ही चला आ रहा है । पीढ़ी का यह बोझ दिनों-दिन बढ़ रहा है और इसी से ऊबकर आदमी परिवर्तन का भ्रम अपने सामने खड़ा कर लेता है कि वह अपने ऊपर लदे हुए बोझ का एहसास कुछ कम करने लगे ।

मक्खन डबलरोटी वाले को अपने कमरे के सामने से लौटते हुए उसने देखा । दूध वाले को भी । किन्तु उसने उन्हें आवाज नहीं दी और लौट जाने दिया। मौत से पहले दूध पीना एक अजीब मजाक है । चार्वाक होता तो शायद यही करता। किन्तु उसने आत्महत्या नहीं की । उसे आश्चर्य होता है, भविष्य की अनिश्चितता का बोध बौद्धिक स्तर पर स्वीकार कर लेने के बावजूद भी चार्वाक कैसे जीवित रहा ? क्यों ? किसलिए ?

वह एक किनारे मुँडेर पर बैठ गया और अपनी दोनो टांगें नीचे लटका ली। दीवाल के ठण्डे स्पर्श की सिहरन हुई, फिर भी टॉगों को नीचे झूलते रहने दिया और एक टक नीचे देखता रहा, जैसे मौत से पूर्व की जिन्दगी झाँक रहा हो।

'मौत !'

कुछ ही क्षण और, फिर तो इस जिन्दगी का पता नहीं क्या हो ? कौन रोयेगा उसके लिए ? कौन याद करेगा उसे ?

'माँ ?'

'बहुत पहले ही मर चुकी है ।'

'पिता ?'

'उनके लिए तो वह कभी का मर चुका है ।'

'बडी दीदी ?'

'उनके रोने के लिए बहुत सारे लोग हैं ।'

'रीता ?'

'इससे बढ़कर आत्म-प्रवंचना और कुछ नहीं हो सकती कि वह सोचे कि उसके लिए कोई लड़की रोएगी ।'

'फिर ?'

'यदि ये सारी स्थितियाँ बिल्कुल विपरीत होतीं, तो भी वह आत्महत्या करता । आत्महत्या के लिए इतना सब कुछ आवश्यक नहीं । उसकी तरह के बहुत से लोग जिन्दा हैं और बहुत सारे लोगों ने आत्महत्या कर ली, जो उसकी तरह के नहीं थे । सहज मृत्यु जीवित रहने का कभी लक्ष्य नहीं बन सकती । वह इसे कभी नहीं स्वीकार कर सकता कि वह बूढ़ा तथा रोगग्रस्त होकर तड़प-तड़प कर मरने के लिए पैदा हुआ है । आत्महत्या पाप नहीं है । अन्यथा भीष्म और युद्ध में जाने वाले सभी सैनिक पापी होते । नाम से क्या होता है ? इच्छा-मृत्यु अथवा आत्म-हत्या ?'

'महान लक्ष्य के लिए बलिदान ?'

'कौन-सा लक्ष्य ? दूसरों के जीवन के लिए अपना बलिदान ? दूसरे कौन ? दो आदमियो में एक नहीं रहे, तो दूसरे को काफी जमीन मिल जायेगी और यदि वे दोनों नहीं रहे, तो जमीन क्या बिल्कुल खाली हो जायेगी ? इस धरती पर और भी तो बहुत सारे जीव हैं । उनका समाज ? समाज ?'

कबूतरों की गुटर-गूँ से वह चौंककर पीछे मुड़ा था । उसके ठीक सामने की मुँडेर पर दो कबूतर थे । एक कबूतर दूसरे का पीछा करता था । शायद वे थोड़ी ही देर पूर्व आकर वहाँ बैठे थे । धूप में चमकते हुए उनके पंख देखकर भी वह अनदेखा कर गया । उसने एक छोटा-सा कंकड़ उठाया और अभी उन पर वह फेंकता कि वे दोनों उड़ गये ।

'मौत से इतना भय क्यो ?' उसने हाथ का कंकड़ दूर फेंक दिया। वह फिर नीचे झाँकने लगा था जैसे वह कुएँ की मुँडेर पर बैठा हो और नीचे जल में

अपना प्रतिबिम्ब देख रहा हो ।

'यदि कही नीचे कूदने पर भी उसकी मृत्यु नही हुई तो ?' हो सकता है केवल उसके हाथ-पॉव टूटकर रह जाये और उसे एक अपाहिज की जिन्दगी बितानी पड़े । उसे आश्चर्य हुआ कि अब तक उसका ध्यान इधर क्यों नहीं गया था। अब जो इधर ध्यान खिचा तो उसे निश्चय होने लगा कि यहाँ से कूदने का परिणाम यही होगा । वह मरेगा नहीं, उसे केवल अपाहिज बनकर जिन्दा रहना पड़ेगा ।

'अपाहिज की जिन्दगी ?'

उसे किसी पढ़ी हुई कहानी के एक बेहया नायक की याद हो आयी, जो हाथ-पॉव कट जाने पर भी जिन्दा रहता है । इतना ही नहीं, धीरे-धीरे उस नायक के शरीर के सारे अंग–ऑख, कान, नाक, जीभ, सभी बेकार पड जाते है । फिर भी वह जिन्दा रहना चाहता है । क्यो ? किसलिए ? किस महान लक्ष्य के लिए ?

"थू ।"

उसे बुरी तरह खाँसी आ गई । खाँसी रुकी, तो उसने मुँह में आया कफ नीचे थूककर गला साफ किया और नीचे ही देखता रहा । अपनी थूक जिसे वह जमीन तक पहुँचता हुआ देखना चाहता था, नहीं देख सका ।

ठीक है । वह कूदकर नही मरेगा, तो इसका अर्थ यह नहीं कि वह जिन्दा रहेगा । जीने के रास्ते बन्द किये जा सकते हैं, किन्तु मृत्यु का द्वार बराबर खुला रहता है । बहुत सारे रास्ते हैं । किसी ट्रेन या बस के नीचे वह बहुत आसानी से अपने को कुचल जाने के लिए छोड़ सकता है । यमुना में कूद सकता है । यह अच्छा है कि उसे तैरना नहीं आता है और यमुना बहुत गहरी है । जो हो, किसी भी तरह उसे आज और अभी मरना है । अब वह इसे टाल नहीं सकता ।

उसे यहाँ से बाहर निकलना चाहिए । बाहर कहीं भी उसे मौत मिल जायेगी और बाहर जाने के पहले वह फिर अपने उसी कमरे में चला आया था जहाँ से वह एक बार विदा हो चुका था । जहाँ की एक-एक वस्तु के प्रति अपना मोह त्याग चुका था ।

उसने कम्बल उतारकर चारपाई पर फेंक दिया था । यदि पुनः लौटने का विचार होता, तो उसी कम्बल को तह कर के सिरहाने तकिये के नीचे रखता, फिर बिस्तर की चादर इस तरह खींचता कि उसकी सारी सलवटें दूर हो जाती और वह जवान बिछे हुए चेहरे की तरह तना हुआ लगता । किन्तु अब कहाँ लौटना ? वह ट्रेन से ही कुचलकर मरेगा । उसने कई विकल्पो में से निश्चयपूर्वक एक चुन लिया था । स्टेशन भी बहुत दूर नहीं था । अधिक से अधिक एक फर्लांग, और कोई न कोई ट्रेन तो गुजरती हुई मिल ही जायेगी । अक्सर गाड़ियाँ इस स्टेशन से गुजरती रहती है । सवारी-गाड़ी या माल-गाडी । कोई न कोई गाड़ी तो मिलेगी ही ।

वह कपड़े बदलने लगा था । गरम पैण्ट, स्वेटर, गरम कोट और फिर टाई। बिना टाई के खुला कोट अच्छा नहीं लगता । वह स्वय बिना टाई बाँधे कभी

खुला कोट नहीं पहनता और यदि कोई दूसरा भी बिना टाई बाँधे, खुला कोट पहनता है, तो उसे बुरा लगता है । ऐसे अवसरों पर 'सलीका नहीं है' कहने की उसकी आदत बन गई है । जूते ब्रश फेरकर चमकाया और फिर अपने बाल सवारने की गरज से शीशे के सामने खड़ा हुआ था ।

'वह उदास है ।' शीशे में अपनी आकृति देखकर उसे आश्चर्य हुआ था। 'क्यों ?'

'क्या मौत से वह भी डर रहा है ? क्या वह जीना चाहता है ? क्या भीष्म भी उसी की तरह मृत्यु से पूर्व उदास हो गये थे ? इच्छा-पूर्ति से सुख-सन्तोष मिलता है न कि दुख । फिर यह उदासी क्यों ? वह हँसते हुए मरेगा ।' और सचमुच वह बहुत जोर का ठहाका मार कर हँसा था ।

'मौत ।'

वह अपने को पैदा होने से नहीं रोक सका था । लाचार था क्योंकि वह अस्तित्वहीन था, किन्तु अब अपने को स्वेच्छा से समाप्त कर सकने के लिए वह पूरी तरह स्वतन्त्र है ।

उसने कमरे से बाहर निकलने के पूर्व एक बार उस पत्र को फिर पढ़ा था, जो उसने पाल को लिखा था । रात मे उसने कई पत्र लिखे थे । अपने पिता को, अपनी बहन को और रीता को । और पत्र लिख चुकने पर उसे लगा था कि उन्हे अपनी मृत्यु की सूचना देकर एक तरह से वह उनके भीतर अपने प्रति सहानुभूति पैदा करेगा । और फिर उसने सभी पत्रो को फाड़ दिया था । अपनी मृत्यु के बाद उनकी सहानुभूति से होगा भी क्या ? उनके आँसू ?

केवल पाल को लिखा पत्र उसने नहीं फाड़ा था। कल की तारीख आज गलत पड़ गयी थी । उसने काटकर ठीक किया ।

पाल !

'मरने से पूर्व तुम्हें भी पत्र लिखने का क्या अर्थ हो सकता है ? तुम्हारे भीतर जीवित रहने की शक्ति है, जिन्दगी की हर ऊब से लड़ने की ताकत है, और तुम कायर नहीं हो । यह सब तुम्हारी ही बातें हैं, जो मैं तुम्हे लिख रहा हूँ । तुम्हारा रास्ता अच्छा है या मेरा, इस सम्बन्ध में, मैं कुछ नहीं कहूँगा । ठीक है, तुम जीना चाहते हो, जीवित रहो । मैं नहीं चाहता । क्यों नहीं चाहता ? यह प्रश्न मेरे सन्दर्भ मे उतना ही निरर्थक हे, जितना तुम्हारे सन्दर्भ मे यह प्रश्न कि तुम जीना ही क्यों चाहते हो ? हम दोनों स्वतन्त्र हैं । जहाँ तक उद्देश्य की बात रही, मेरी समझ मे कुछ नही आता । मृत्यु का उद्देश्य ? जन्म का उद्देश्य ? तर्कहीन जन्म तर्कहीन मृत्यु। शब्द ? ध्वनियो का क्रम । अर्थ ? सामाजिक आवश्यकता । सत्य कुछ नहीं। इतनी अनास्था, इतना अविश्वास लेकर जीवित रहता भी कैसे ? नहीं, यह बहुत बड़ा झूठ होगा । यदि किसी उद्देश्य को बीच में घसीट लाऊँ । वैसे यह भी एक चलन है कि व्यक्तिगत कारणवश की गयी आत्महत्या को कोई सामाजिक खोल पहना दिया जाये ।' इसके बाद वाली पंक्ति उसे अनावश्यक लगी । उसने काट

दी। न जाने कैसे पत्र लिखते समय उसे दिल्ली के उस व्यक्ति की याद हो आयी थी, जिसने हिन्दी के विरोध में आत्महत्या की थी । उस समय वह दिल्ली में ही रहता था और वह व्यक्ति उसका पड़ोसी था । सही मायने में उसकी आत्महत्या का एक असामाजिक कारण था । किन्तु उस समय वह उस भेद का भण्डाफोड़ चाहते हुए भी नहीं कर सका था । फिर अब उसका उपयोग भी क्या रहा ? उसकी आत्महत्या से इसका सम्बन्ध भी क्या ?

वह फिर पढ़ने लगा था ।

'पता नहीं आत्महत्या की कौन-सी व्याख्या की जाये । मानसिक रोग ?' शायद इससे डॉक्टरों का भला हो ।

'प्रेम की असफलता ?'

'यदि मैं लिखूँ कि ऐसी कोई बात नहीं, तो शायद इस अभाव को ही कारण मान लिया जाये । चलो, कुछ नहीं लिखता । जिसको जो भावे अर्थ दे ले। तुम तो वर्षों से एक ही कमरे में साथ-साथ रहते आ रहे हो । तुम्हें तो पता है सब कुछ । क्यों ?'

'यदि कहीं एक बार पुनः इस धरती पर जन्म लेने के पूर्व मेरी राय माँगी गयी, तो मैं स्वीकार कर लूँगा कि फिर आत्महत्या कर सकूँ ।'

'क्यों पाल, क्या यह मुमकिन है कि दुबारा मैं जब इस धरती पर आऊँ, तो बीते जन्म का अर्जित अनुभव मेरे साथ हो और ऐसा ही बार-बार होता रहे और हर बार मैं आत्महत्या ही करता रहूँ ।'

तुम्हारा,

दिनेश ।

पत्र को मोड़कर उसने मेज पर इस तरह रख दिया की कमरा खोलते ही पाल की नजर उस पर पड़ जाये । और कमरा बन्द करके नीचे उतर आया था।

यदि किसी ने वहाँ भी उसे बचाने की कोशिश की और वह मर नहीं सका तो ? अथवा केवल उसके हाथ-पाँव कटकर रहे गये तो ? नहीं, वह बहुत सावधानी से रेल की पटरी से थोड़ी दूर हटकर खड़ा रहेगा और जैसे ही गाड़ी आयेगी वह उसके आगे हो जायेगा । क्षण भर में ही उसकी लाश पिस जायेगी । कोई तुरन्त पहचान भी नहीं सकेगा कि आदमी कौन था । ट्रेन रुक जायेगी और लोग घेरकर खड़े हो जायेंगे । वह तमाम अजनबी लोगों के साथ अपनी लाश के पास खड़ा हो गया था । रुकी हुई गाड़ी, उतरे हुए यात्री, आसपास से चले आये तमाशगीर । सभी के चेहरों पर अजीब तरह का छाया हुआ भय । अनेक प्रश्न ।

'पता नहीं कौन है ?'

'जवान लगता है ।'

'पहनावे से कोई सम्पन्न आदमी लगता है ।'

'कोई डायरी ? कोई कागज ? कोई पत्र ?'

'कुछ नहीं ।'

अचानक उसने भीड मे से अपने पिता को बाहर निकलते हुए देखा ।

'यह मेरा बेटा था ।'

फिर उसकी बडी दीदी निकलकर आयी ।

'यह मेरा भाई था ।'

और फिर रीता।

'यह मेरा प्रेमी था । और धीरे-धीरे उसके सारे दोस्त भी चले आये ।

और वह चलते हुए मुस्कराया । मैं किसी का कुछ नहीं था । मैं पैदा हुआ था और मर गया था।

वह हॉस्टल से बाहर सडक पर दूर तक चला आया था, किन्तु वह इस दिवा-स्वप्न में इतना खो गया था कि उसे ध्यान ही नहीं रहा कि वह कितनी दूर चला आया है । अचानक स्वप्न टूटा, तो वह कमल शिशु मन्दिर के सामने था और सड़क के किनारे होकर चल रहा था।

वह अब सड़क के बीच में चला आया और कुछ दूर तक अगल-बगल देखते हुए चलता रहा था, किन्तु भीतर से उस स्वप्न को जोडने का प्रयत्न भी करता रहा । जैसे कोई अधूरी कहानी को जोड़ रहा हो, 'हाँ सभी लोग आ गये थे, फिर क्या हुआ ?'

काफी प्रयत्न के बावजूद भी वह अपना दिवा-स्वप्न पुनः पूरी तरह नहीं जोड़ सका था । उसे लगता था, ट्रेन से उतरे हुए यात्री ऊबकर शोर मचाने लगे थे, 'जल्दी गाड़ी ले चलो । हमें समय से अपने काम पर पहुँचना है । देर हो रही है । गार्ड ने हरी झण्डी दिखायी थी । ड्राइवर ने सीटी दी थी । और ट्रेन चल पड़ी। केवल वही बच गया, जो अपनी लाश को तटस्थ भाव से घूर रहा था और पूछ रहा था' क्या मैं यही था ? मैं क्यों था? वह नहीं होता, तो इस दुनिया का क्या बिगड़ जाता ? उसके होने से ही दुनिया का क्या भला हो गया ?'

पीछे से आती हुई एक बस की आवाज दूर से ही सुनायी पड़ी, तो वह सड़क से उतरकर एक किनारे हो गया था और जब बस गुजर गयी, तो वह सोचने लगा था कि सड़क से किनारे हो जाना उसकी गलती थी । उसे बीच सड़क में आ जाना चाहिये था । बस उसके ऊपर से होकर गुजर जाती और मौत की तलाश में उसे स्टेशन तक नहीं चलना पड़ता । जब मरना ही है, तो क्या स्टेशन और क्या सड़क । मृत्यु के लिये हर स्थान का अर्थ समान है । यही अच्छा था । अब कोई बस जाएगी, तो वह नहीं हटेगा । उसने फैसला कर लिया था और पीछे से आने वाली हर आवाज को आँकते हुए सड़क के बीच से चलने लगा था । वह बार-बार मुड़कर देखने लगा था । कोई बस नहीं कोई ट्रक नहीं ।

'मौत भी माँगने से नहीं मिलती । नहीं तो यही सड़क अक्सर कितनी व्यस्त रहती है । उसकी किस्मत ही खोटी है ।' उसने सोचा था ।

'ऊँह ! अब भाग्य से भी क्या लेना-देना ।' वह चौराहे के करीब पहुँच रहा था और तभी उसे सामने से आता हुआ एक ट्रक दिखा था । उसने अपना

समूचा साहस बटोरकर निर्णय लिया था कि वह इस ट्रक के सामने से नहीं हटेगा ।

और वह एक टक सामने घूरने लगा था । सामने से आती हुई मौत । वही मौत, जिसे उसके जन्म के साथ उसकी माँ ने झेला था । जिसकी अवश्यमभाविता जन्म के साथ ही बँधी हुई आती है । केवल बदली हुई गति । ट्रक की तेज गति के साथ ही उसके दिल की धड़कन भी तेज हो गयी थी । उसका चेहरा विकृत होने लगा था । शरीर की सारी नसों में एक तनाव आ गया था, जैसे जिजीविषा अपनी अन्तिम शक्ति को चुकने से पूर्व समेट रही हो और वह सब कुछ महसूस करते हुए आगे बढता रहा था । दूर से चीखती हुई ट्रक की आवाज, वह सामने से नहीं हटा था । बार-बार बजता हुआ भोंपू, वह कुचलने को प्रस्तुत था । कुछ क्षण, कुछ पल और ट्रक गुजर गया था । उसके समूचे शरीर को एक तेज आँधी हिला गयी थी और वह जीवित था । न जाने कैसे, हजार मानसिक तैयारी के बावजूद, मन के सारे निग्रह तोड सड़क से उसका शरीर एक किनारे हट गया था । वह बुरी तरह कांप रहा था और पसीने-पसीने हो गया था ।

उसने पीछे मुड़कर एक बार देखा था । ट्रक बहुत दूर निकल गया था। उसकी बगल में उसे घूरता हुआ एक आदमी गुजरा, तो वह डर गया, 'कहीं इस व्यक्ति ने उसका आशय भांप न लिया हो ।' वह तेजी से एक चाय घर की ओर मुड गया था ।

उसे अब आश्चर्य हो रहा था कि, 'यह सब कैसे हो गया ? कैसे मृत्यु इतने निकट से होकर गुजर गयी और वह जिन्दा बच गया ? कहीं ऐसा तो नहीं कि उसका दूसरा जन्म हो चुका है और पुराने सभी अनुभवों के साथ वह बचा रह गया है ?'

'नहीं ।'

'कहीं ऐसा तो नहीं हुआ कि ट्रक ड्राइवर ने ही अपनी गाड़ी किनारे से निकाल ली हो ।'

'नहीं ।' उसे घबराकर भागने की अब याद हो आयी थी, वह स्वयं एक किनारे हट गया था ।

उसकी टाँगे अभी तक कॉप रही थी और वह बार-बार सिहर जाता था। एक प्याला चाय पी चुकने के बावजूद वह वहीं बैठा रहा । वह बहुत थका हुआ महसूस कर रहा था । 'हॉस्टल लौटने के पूर्व क्यों नहीं एक प्याला चाय और पी ले ?'

उसने चाय के लिए आवाज दी ।

●

आन्दोलन

"बीबी जो ! पानी नहीं आ रहा है ।"

महरी अनधुले बर्तन लिए पाइप के पास बैठी है । उसके दोनों हाथ गन्दे हैं, जिन्हें वह दूसरे के बच्चो की तरह अपने से ही किनारे किये हुए है । बीबी जी शीशे के सामने खडी अपना जायजा ले रही थीं कि अचानक चौंक पड़ती हैं । साड़ी का आँचल खिसकाती हुई शीशे के सामने से हट जाती हैं, "पानी नहीं आ रहा है ! अभी-अभी तो आ रहा था ! क्या हो गया ?" सीधे पाइप तक पहुँचकर पाइप की टोंटी पकडती है और नटखट बच्चे के कान की तरह ऐठना चाहती हैं, किन्तु टोंटी तो पहले से ही पूरी तरह चढ़ी हुई है । वे बन्द करने के लिए टोंटी को उल्टा घुमाने के लिए जोर लगाती हैं । टोंटी नहीं घूमती तो उसे जैसा-का-तैसा छोड देती हैं और वही से चीखती है, "चरित्तर ! अरे चरित्तर अभी तक नहीं जगा ? जाकर देखो, बाहर का पाइप तो किसी ने नहीं खुला छोड दिया ।" और चरित्तर के पीछे-पीछे स्वयं भी लग जाती है । दूर से लॉन में लगा बाहर का पाइप बन्द दिखाई पड़ता है और वे लौट पड़ती हैं ।

"पाइप तो बन्द है ।" चरित्तर की आवाज सुनती हुई भी नहीं सुनती है। "सुनते हो जी ! पानी नहीं आ रहा है ।" वे अपने 'सुनते हो जी' के पायताने खड़ी होती है । बिजली का स्विच खोलती है, "बिजली भी गयी है ।" सुनते हो जी तुरन्त उठकर बैठ जाते हे । "पानी नही आ रहा है ?" वे बीबी जी की ओर देखते हैं, जैसे पानी की बन्द टंकी देख रहे हों ।

"अभी-अभी आ रहा था । मैं गुसलखाने में थी तो पानी आ रहा था और अचानक बन्द हो गया ।" 'सुनते हो जी' अपने सिरहाने से सिगरेट निकालते है और पत्नी गीता के आने वाले श्लोकों का अनुमान लगाते हुए माचिस जलाते है । "मैं शौच गयी थी तो पानी था । मैं वहाँ से लौटी तो भी पानी था। मैं हाथ धोती रही तो भी पानी था । पैर धुला तो भी पानी था। मुँह पर छींटे मारे तो भी पानी था । और वहॉ से चली तो भी पानी था । किन्तु अब पानी बन्द हो गया ।"

वे सिगरेट जलाकर पहला कश खीचते है । और फिर बीबी जी की ओर धुआँ फेंकते हैं । बीबी जी मक्खी मारने के अन्दाज में अपना एक हाथ चेहरे के सामने चलाती है फिर मुँह विदकाती हुई पीछे हटती है और तुरन्त एक मक्खी की

तरह स्वयं वाहर हो जाती है, जैसे फिलट की गन्ध छू गयी हो, "हद हो गयी ! इस सिगरेट के मारे तो और भी नाक में दम । अरे, बैठी क्यों हो ? तब तक घर मे झाडू ही लगा दो ।" सिगरेट की गन्ध अब वे भूल चुकी है ।

'सुनते हो जी' चारपाई छोड़कर आँगन में निकल आते हैं । महरी पाइप के पास से उठकर झाडू लगाने लगी है । "जलकल वालों का भी कोई भरोसा नहीं। बिना किसी पूर्व सूचना के जब मर्जी हुई, पानी बन्द कर दिया ।"

'सुनते हो जी' पाइप के पास पहुँचकर टोंटी ऐंठने लगते हैं । पहले सीधे, फिर उल्टे और जब किसी भी तरह टोंटी नहीं घूमती, तो वैसे ही छोड़ देते हैं।

"अरे मुन्नू ! कल अखबार में तो कुछ नहीं निकला था ?" वे झुके थे । अपने छोटे भाई मुन्नू को अपने पास देखकर पूछते हुये सीधे खड़े हो जाते हैं ।

"मैंने तो नहीं देखा था । कल का अखबार लाऊँ ?" मुन्नू की बात 'सुनते हो जी' को पसन्द आ जाती है और वे अपनी स्वीकृति दे देते हैं, "हो सकता है निकला ही हो ।"

'सुनते हो जी' बाहर बरामदे में निकल आते हैं । और टहलते हुए बरामदे के एक छोर तक पहुँच जाते हैं, जहाँ से पड़ोसी रायजादा साहब की कोठी के बाहर कोई दिखाई दे तो पूछताछ कर सकें । 'शायद सभी लोग सो रहे हैं', वे सोचते हैं और पीछे मुड़ जाते हैं ।

"अखबार में तो ऐसी कोई भी सूचना नहीं है ।" मुन्नू के हाथ से अखबार लेकर 'सुनते हो जी' सरसरी नजर से देखने लगे हैं, 'लखनऊ में पुलिस की गोली से चार मरे, पच्चीस घायल,' 'कानपुर में हड़ताल', 'प्रधानमंत्री बाढ़ग्रस्त क्षेत्र के दौरे पर', 'सावन की घटा' पात्र मुमताज और जसवन्त पिक्चर पैलेस में आज 12 बजे भव्य उद्घाटन ।"

'सुनते हो जी' ने अखबार पूरी तरह से देख लिया है, उसे टूटी बाँह की तरह झूल जाने दिया है ।"जरा सामने वकील साहब के यहाँ पता लगाओ कि पानी आ रहा है या नहीं ।" 'सुनते हो जी' ने मुन्नू को बाहर भेज दिया है और अब वहीं बरामदे में एक कुर्सी पर बैठकर पढ़ी हुई खबरें फिर पढ़ने लगे हैं । ऐसे उनका ध्यान अखबार पढ़ने में नहीं, बल्कि घर के भीतर और बाहर वकील साहब की कोठी की ओर लगा है । वे किसी भी क्षण यह सूचना मिलने की आशा लिए हुए हैं कि 'पानी आ गया !' और फिर अपना मूल अधिकार पा लेने के सन्तोष जैसा सन्तोष।

"कितनी बार कहा होगा कि घर में एक हैण्ड-पम्प लगवा लो, किन्तु इनको तो और कामों से ही फुरसत नहीं । यदि पानी नहीं आता तो फिर कब नाश्ता तैयार होगा, कब खाना बनेगा ? कब दफ्तर जायेंगे ? कब ?"

'सुनते हो जी' भीतर से महरी को सुनाकर कही पत्नी की बातें सुनते हैं और निर्णय लेते हैं कि अगले महीने वे अवश्य ही हैण्डपम्प लगवा लेंगे । रुपये-पैसे की कोई चिन्ता नहीं किन्तु और बहुत सारे झंझट भी तो हैं । मिस्त्री ठीक करो,

पाइप खरीदो, और बहुत सारे काम । किसी छुट्टी के दिन हो जायेगा । 'सुनत हो जी' अखबार एक किनारे रख देते है ।

"लगता है वही बैठ गया । हद हो गयी । एक सेकेण्ड क काम के लिए एक घण्टा ।" वे टहलते हुये फाटक तक पहुँचते है और अपनी बाहे फाटक पर टेककर रास्ता देखते हैं । ठीक सामने वाली अधूरी कोठी की ओर उनका ध्यान चला जाता है । दो-तीन औरतें शौच का लोटा हाथ मे लिये उधर ही बढ रही हैं। जैसे कोई बहुत अशिष्ट हरकत उनसे हो गयी हो, वे तुरन्त लज्जित हो लेते हैं और दूसरी ओर देखने लगते हैं । पता नहीं इनके लोटे खाली भी हो तो कौन पानी देखने जाता है । वे दूसरी ओर मुँह फेरकर सोचते हैं ।

"क्या करने लगे थे ? पानी नही आ रहा है ।"

"हॉ, कहीं नहीं आ रहा है ।" मुन्नू के आने के लिए उन्होने फाटक खोल दिया है और जब वह आगे निकल जाता है, तो स्वयं फाटक बन्द करके उसके पीछे चल पड़ते हैं ।

"साहब, आपके यहाँ पानी आ रहा है ?" पडोस के रायजादा साहब का नौकर है ।

"नहीं ।" बहुत रूखा उत्तर देते है और आगे बढ जाते है । अब तो सचमुच उन्हें जलकल वालों पर क्रोध आ रहा है । दो-चार मिनट के लिए पानी बन्द हो जाये, तो नहीं खलता, किन्तु घण्टों पानी बन्द रहे और बिना किसी सूचना के, यह भी भला कोई बात हुई ? अब वे सरकार को भी खरी-खोटी सुनाने के मूड में आ रहे हैं, किन्तु यह मौका ठीक नहीं है, और वे भी तो सरकार की पार्टी के है। बिना सोचे ही, सोचकर चुप लगा जाते हैं । आँगन में पहुँचते है, तो देखते है राधा भी जग गयी है और पाइप की टोटी ऐंठ रही है । वे कुछ बोलते नहीं है । सोचते हैं, इस बीच शौच से लौट आयें, किन्तु हाथ मुँह कहाँ धोयेंगे, इस ख्याल के साथ थोड़ी देर और प्रतीक्षा करने के लिए लाचार हो जाते हैं ।

"रोज बाल्टी भरी रहती थी, आज वह भी खाली है । कौन जानता था कि पानी चला जायेगा ?" 'सुनते हो जी' की धर्मपत्नी ने अँगीठी आँगन मे लाकर रख दी है और चरित्तर को आज्ञा देती है, "खडे होकर मुँह क्या देख रहे हो ? अँगीठी जलाओ ।" सभी चरित्तर की ओर मुड़कर देखते हैं तो चरित्तर सकपकाया हुआ अँगीठी के लिए कोयला लेने बढ जाता है । महरी भी घर मे झाड़ू लगाकर खड़ी थी, अब मँजे हुये बर्तनो की ओर बढ़ जाती है । 'सुनते हो जी' आँगन मे पडी एक चारपाई पर बैठ जाते हैं और पाइप की टोंटी को एक टक घूरने लगते हैं ।

"राधा, चारपाई पर सिगरेट और माचिस पड़ी है, लाओ तो ।" राधा को वे अपने कमरे में जाते हुए देखते हैं । धूप पूरे आँगन मे पसर गयी है । 'सात से क्या कम होगा ।' वे अनुमान लगाते है, फिर बीबी जी से पूछते है, "जरा घडी देखना क्या समय हुआ है ?"

"सवा सात," बीबी जी बिना अपने कमरे में पीछे को लौटे ही समय

वताती है, जैसे पहले ही घडी देख चुकी हो ।

"सुनो ! कपूर साहब के यहाँ हैण्ड पाइप है । क्यो नही वहीं से एक वाल्टी मँगवा ले ।" बीबी जी उनके बहुत करीब आ गयी हैं और बहुत मीठे बोलने लगी है । "कपूर साहब के यहाँ से पानी नहीं आयेगा ।" 'सुनते हो जी' बहुत कठोर आवाज में बोलते हैं, तो बीबी जी की आवाज भी अचानक बदल जाती है । राधा के हाथ से सिगरेट और माचिस लेकर वे सिगरेट जलाते हुए बीबी जी की कडवी आवाज सुनते है, "पानी नहीं आयेगा, तो काम कैसे चलेगा ? दफ्तर नहीं जाना है। हमें क्या ?" और वे तमककर उनके पास से हटकर चरित्तर की ओर वढ़ जाती है ।

चरित्तर कोयले तोड़ रहा है। उसके पास कुछ पल खड़ी होकर बीबी जी सोचती है कि इसे ही बाल्टी लेकर भेज दें । झगड़ा हुआ है, तो क्या हुआ ? पानी के लिए तो वे कभी नहीं मना करेंगे ।

"मैं कहता हूँ, कपूर साहब के यहाँ से पानी नहीं आयेगा," 'सुनते हो जी' सिगरेट का धुँआ उछालते हुये चीखते हैं । और चारपाई से उठ खड़े होते हैं ।

"हॉ, हाँ नहीं आयेगा । मैं कब लाने जा रही हूँ ?" बीबी जी वहाँ से झनझनाती-पटपटाती बाहर निकल जाती है । मुन्नू भी आँगन में निकल आता है और पाइप के पास पहुँचकर टोंटी ऐंठने लगता है । इस बीच 'सुनते हो जी' ने दूसरी सिगरेट भी जला ली है और जल्दी-जल्दी धुऑ फेकने लगे हैं । धुऑ और गुस्से के दबाव के कारण पेट में भी दबाव बढ़ जाता है और वे सिगरेट मुँह में लगाये हुए शौचालय में घुस जाते हैं ।

"भाभी, यदि कहो, तो चरित्तर को लेकर कपूर साहब से यहाँ से पानी ।"

"नही आयेगा पानी," मुन्नू की बात बीच ही में काटकर बीबी जी इतनी तेज आवाज में बोलती हैं कि उनकी आवाज शौचालय में आसानी से पहुँच सके । मुन्नू वहाँ से किनारे हट जाता है । बीबी जी का बड़बड़ाना चालू रहता है, "हमें दफ्तर नहीं जाना है । देर होगी, मेरी बला से छोड दो जी बर्तन । जाओ तुम भी अपने घर जाओ । जब पानी ही नहीं है, तो तुम क्या करोगी ? अरी ओ राधा की बच्ची ! तू वहाँ बैठी कौन-सा पुराण पढ़ रही है । उठ वहाँ से ।" राधा डरी हुई पाइप के पास से उठकर चलने को होती है, तब तक बीबी जी स्वयं पाइप के पास पहुँच जाती हैं । एक हाथ से राधा को झटका देकर वहाँ से उठा देती हैं और स्वयं राधा के पीछे-पीछे चल देती है, जैसे पीछा कर रही हों । भीतर से राधा को पीटने की मनःस्थिति पर वे बहुत मुश्किल से काबू पाती हैं और अपने कमरे में चली जाती है । अधबुने स्वेटर के साथ दोनों सलाइयाँ हाथ में लिए क्षण भर को अपनी ही बुनाई एक समीक्षिका की दृष्टि से परखती हैं, फिर वाहर निकल जाती हैं । आँगन से गुजरती हैं, तो इस तरह, जैसे वे न तो किसी को देख रही हैं और न देखना चाहती हैं । सीधे बरामदे में पहुँचकर वे कुर्सी पर बैठ जाती हैं और सुमिरनी के

दानों की तरह उनके हाथ की सलाइयाँ स्वतः चलने लगती हैं ।

सामने म्यूनिसिपैलिटी के पाइप पर घडों की भीड लगी है । दो नंगे बच्चे पाइप के ऊपर बैठे हुए टोंटी ऐंठ रहे है । औरतें एक अर्धवृत्ताकार पंक्ति में बैठी हुई हैं । जैसे ही पानी आयेगा, ये औरतें पहले भरने के लिए झगडने लगेगी । बीबी जी की आँखो के सामने उन औरतों का झगड़ता हुआ चित्र खिच आया है और वे किसी भी तरह बिना मुस्कराये नहीं रह पाती हैं ।

आहट पाकर अचानक बीबी जी की दृष्टि दरवाजे की ओर मुड जाती है। मुन्नू है । चरित्तर को साथ लिए कपूर साहब के यहाँ पानी के लिए निकला है । वे कुछ बोलती नहीं, केवल सिर झुका लेती हैं । कुछ ही दिनों पहले राधा और अलका में झगडा हुआ था । फिर राधा रोती हुई अपने घर आयी थी । बीबी जी अलका के घर गयीं थी । और बात बढ़ गयी थी । शाम को 'सुनते हो जी' की बीबी और कपूर साहब की बीबी जो दिन भर बैठकर पूरे मुहल्ले के दूसरे घरों का हिसाब रखती थीं, एक दूसरे का हिसाब रखने लगीं । पहले दोनों का घर मिलाकर एक घर था और अब हिन्दुस्तान और पाकिस्तान, दो अलग-अलग राष्ट्रों की तरह दोनों घरों में एक दूसरे के विरूद्ध प्रचार शुरू हुआ ।

'संकट के समय शान्ति से काम लेना भीख माँगना नहीं है' बीबी जी अपने को समझाती हैं । 'पडोस मे है तो कभी न कभी मुझसे भी काम पड़ेगा ही और अपने घर में हैण्ड पाइप लग ही जायेगा । आज नहीं, तो कल ।'

बीबी जी अपने बरामदे से उठने के पहले अधूरे स्वेटर के सामने वाले पल्ले को बालिस्त से नापती हैं । अभी पूरा होने में कम से कम तीन-चार दिन और लग ही जायेंगे । वे ऊन के गोले में सलाई फँसाते हुए वहाँ से उठ जाती हैं। 'अभी सारे काम पडे हैं', उन्हें ध्यान आता है । अँगीठी अब जल जाएगी, आँगन में निकलते हुए धुएँ को देखकर वे आश्वस्त हो जाती हैं । कमरे में जाकर ऊन और सलाइयाँ रखती है । शीशे के सामने खडी होकर अपने को देखती हैं और बिना किसी तरह का भाव लिए वहाँ से चल देती है। महरी ने कूड़ा एक किनारे लगा दिया था । अब उसे उठाकर एक बडे से लोहे के परात में रखने लगी है । 'सुनते हो जी' शौचालय से लौट आये हैं और पाइप के पास बैठे हुए हैं । यदि अकेले होते, तो शौचालय के पाइप से ही हाथ-मुँह धो लेते, किन्तु गन्दगी का बोध दूसरों को देखकर हो ही जाता है ।

"सुनो कूडा छोड़ दो । चार डिब्बे आटा निकाल कर गूँथ लो ।" बीबी जी महरी के पास आकर खडी हो जाती हैं । महरी उठती है, तो बीबी जी रोक देती हैं, "अच्छा पहले कूड़ा फेंक दो । अभी तुम्हारे हाथ गन्दे हैं । मैं निकाल ले रही हूँ ।"

"अरी ओ राधा, एक ईंट लाना ।" 'सुनते हो जी', पाइप की टोंटी नहीं घुमा पाते । टोंटी बुरी तरह कस गई है । वे राधा को ईंट उठाते और फिर ईंट लेकर अपनी ओर आते हुए देख रहे हैं । राधा के नजदीक आ जाने पर वे हाथ

बढ़ाकर ईंट ले लेते हैं और टोंटी को ठोंकने लगते हैं । ईंटी कच्ची थी, टूट जाती है, तो पास खडी राधा को डाँटते है, "कैसी ईट लायी ?" राधा फिर ईंट लाने चल देती है और वे टूटी ईंट के एक बडे टुकडे से फिर टोंटी पर ठक-ठक करने लगते हैं। 'अभी मुन्नू भी पानी लेकर नही आया,' उन्हे पता है कि मुन्नू और चरित्तर कपूर साहब के घर गये हुए है, 'पता नहीं, वहाँ क्या करने लगे ?' वे मन-ही-मन प्रतीक्षा कर रहे है ।

"हाँ, यह ठीक है ।" अपने हाथ में ईंट ले लेते हैं । पहली ही चोट से टोटी घूम जाती है । वे ईंट एक किनारे रख देते है । और टोंटी हाथ से घुमाने लगते हैं । अब चूडी कट गयी है और टोंटी दोनों ओर घूमने लगी है । 'टप' पानी का एक बूँद गिरता है । वे टोंटी घुमा रहे हैं । पानी की एक पतली धार । "पानी आ गया ।" राधा खुशी से चीखती है । और वे टोंटी घुमा रहे हैं । पानी की धार अब बहुत तेज होकर गिरने लगी है । टोटी बन्द ही नहीं होती । बीबी जी और महरी दोनों पाइप के पास आकर खड़ी हो गयीं । टोंटी बन्द नहीं होती । वे हाथ-मुँह धोने लगते है, फिर वहाँ से उठ जाते हैं । उन्हे महसूस होता है, उन्होंने कहाँ गलती की है । टोंटी तोडनी थी म्युनिसिपैलिटी की ओर उन्होंने अपने घर की तोड़ दी । वे बाहर निकलते है, तो भरी बाल्टी लिए आते हुए चरित्तर और मुन्नू दिखाई पड़ते है । उनके जी में आता है कि उन दोनों के हाथ से बाल्टी छीनकर सारा पानी बाहर उड़ेल दें, किन्तु कुछ नही करते । बरामदे में पडे तख्त पर चुपचाप शान्तिपूर्वक बैठ जाते हैं ।

●

विश्वजीत

जन्म
1935
कुशीनगर, उत्तर प्रदेश

शिक्षा
एम.ए. (हिन्दी तथा भाषा विज्ञान)
पी.एच.डी. (भाषा विज्ञान)

कृतियाँ
करमजली (कहानी संग्रह)
इतिहास - बोध (कहानी संग्रह)
भाषा विज्ञान पर अनेक शोध पत्र तथा विभिन्न
पत्र - पत्रिकाओं में कहानियाँ प्रकाशित

संप्रति
सेवानिवृत्त रीडर
(क. मु हिन्दी एव भाषा विज्ञान विद्यापीठ, डॉ भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, आगरा)
स्वतंत्र लेखन

संपर्क
ग्राम—रामपुर, पोस्ट—कोटवा बाजार
(वाया — रामकोला)
जिला — कुशीनगर —274305 (उ.प्र.)